लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

हेम बरुवा

... के
निर्माता

भारतीय साहित्य के निर्माता

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

हेम बरुवा

अनुवादक
भारतभूषण अग्रवाल

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

प्रस्तावना

कमल की गंध उसकी निर्माण करने वाली पंखुड़ियों की अपनी-अपनी गंध का योग होती है। भारतीय संस्कृति एवं साहित्य का सामासिक सौंदर्य विभिन्न प्रादेशिक क्षेत्रों की उपलब्धियों के योग में निहित है। अगर पंखुड़ियाँ तोड़ ली जायँ तो कमल का अस्तित्व समाप्त हो जाता है; यदि प्रादेशिक क्षेत्रों की उपलब्धियों की अनदेखी कर दी जाय, तो भारत की सामासिक प्रतिमा विच्युत और विखण्डित हो जाती है।

इस दृष्टि से, संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में एक प्रदेश ने जो उपलब्धि की है उसे पुस्तकों के माध्यम से अपने महान् देश के अन्य प्रदेशों तक पहुँचाने का प्रयत्न अत्यन्त अभिनन्दनीय है। साहित्यार्थी **लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा** (१८६८—१९३८) से सम्बन्धित यह पुस्तिका ऐसा ही एक विनम्र प्रयास है। ऐसी पुस्तिकाओं की माला का आयोजन करके साहित्य अकादेमी ने निःसंदेह एक प्रशंसनीय भाव को रूप दिया है।

जिस उद्देश्य से यह आयोजन किया गया है यदि यह पुस्तक उसे पूरा करने में सफल हुई तो मैं अपने परिश्रम को पुरस्कृत समझूँगा। गौहाटी के प्रोफेसर नन्द तालुकदार ने मुझे पुस्तकें देकर और इसके सम्बन्ध में बार-बार जिज्ञासा करके जो सहयोग दिया है उसके लिए मैं अपने इन भूतपूर्व शिष्य के प्रति ऋणी हूँ।

नई दिल्ली,
मई १९६७

—**हेम बरुवा**

क्रम

संक्षिप्त जीवन-परिचय

एक कवि की उक्ति है : "नवम्बर के आकाश से अधिक सुन्दर और क्या हो सकता है !" पर जब नवम्बर का आकाश धुल जाता है तब वह उससे भी सुन्दर हो जाता है। **लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा** के जन्म के अवसर पर भी आकाश इसी प्रकार दिग्दिगन्त तक पूर्णिमा के रजत आलोक से धुलकर निखर आया था। **बेजबरुवा** का जन्म नवम्बर १८६८ में हुआ था। उनके जन्म-काल का परिवेश और दृश्य-पट एक अनोखी आभा से मण्डित था। और, भविष्यवक्ताओं के अनुसार, नवम्बर मास में जन्मे व्यक्ति बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न होते हैं।

बालक लक्ष्मीनाथ के पिता दीनानाथ **बेजबरुवा** ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत उच्चपदस्थ सरकारी अफसर थे। सड़कों के विकास के पहले उन दिनों नदियों के मार्ग ही यातायात के प्रमुख साधन थे। स्थानान्तरण हो जाने के कारण उनका परिवार अधित्यका में स्थित **नौगाँव** से नाव द्वारा उपत्यका में स्थित **बड़पेटा** में पहुँचा था। लम्बी और संकटाकीर्ण यात्रा होने के कारण गंतव्य तक पहुँचने में कई दिन लगते थे और रात के समय नावों को ब्रह्मपुत्र के रेतीले तटों से बाँध देना पड़ता था। परिवार के **बड़पेटा** जाते समय **आँहटगुड़ी** नामक स्थान पर ऐसे ही पड़ाव के अवसर पर तट से बँधी नौका में बालक लक्ष्मीनाथ का जन्म हुआ था। आधुनिक असमिया साहित्य का यह विक्टर ह्यूगो संगीत और चाँदनी के ऐसे ही आदर्श परिवेश में जन्मा था—जब नदी के रेतीले तट चाँदनी में रजत की भाँति चमक रहे थे और ब्रह्मपुत्र अपने संगीतमय रोर से तटों को गुंजित करता प्रवाहित हो रहा था। लक्ष्मी-पूर्णिमा की रात में प्रकट होने के कारण बालक **बेजबरुवा** का नाम लक्ष्मीनाथ रखा गया।

ऐसे आदर्श परिवेश में **बेजबरुवा** का जन्म अपने-आपमें ही एक प्रगीत है। जिस तट पर और जिस नाव में लक्ष्मीनाथ का जन्म हुआ था वे तो आज नहीं हैं, किन्तु जन्म का साक्षी वृद्ध ब्रह्मपुत्र उस महाकाव्यिक घटना के स्मृति-लेख की भाँति आज भी विद्यमान है। **'मोर जीवन सौवरण'** नामक अपनी आत्म-कथा में **बेजबरुवा** कहते हैं कि उन दिनों असमिया समाज में यह प्रथा प्रचलित थी कि पुत्र के जन्म की घोषणा शंख-ध्वनि और अन्य मंगल अनुष्ठानों से की जाती थी।

किन्तु उनका जन्म ऐसी असाधारण परिस्थितियों में और ऐसे निर्जन स्थान में हुआ कि ये अनुष्ठान संभव ही न थे। बालक लक्ष्मीनाथ अपने परिवार में पाँचवें बालक थे।

लक्ष्मीनाथ के पिता असमिया वैष्णव केन्द्र की काशी के रूप में विख्यात **बड़पेटा** में लगभग तीन वर्ष रहे। संस्कृति और धर्म के इसी शान्त वातावरण में बालक लक्ष्मीनाथ के व्यक्तित्व का क्रमिक विकास और प्रस्फुटन हुआ। तदुपरान्त, फिर स्थानान्तरण के कारण, उनका परिवार **तेजपुर** में आ गया। **तेजपुर** भी ऐतिहासिक महत्त्व का स्थान है। वहाँ की पहाड़ियों और घाटियों की दृश्यावली के सौंदर्य ने बालक के मन में एक नवीन आनन्द भर दिया। उनके पिता ने अपने बालकों की देख-रेख के लिए रविनाथ नामक एक सज्जन नियुक्त कर रखे थे। बालक लक्ष्मीनाथ पर रविनाथ का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। रविनाथ कठोर अनुशासनप्रिय थे; लोक-संस्कृति एवं धर्मानुशासन का उन्हें यथेष्ट ज्ञान था। जिस प्रकार पुश्किन ने अपनी वृद्धा छात्रा से रूसी लोकगीत सीखे थे, उसी प्रकार **बेजबरुवा** ने रविनाथ से लोकवार्ताओं के अतिरिक्त महाकाव्यों और भारतीय पुराणों की अनेक कथाएँ सीख लीं। शैशव के इस सम्पर्क से **बेजबरुवा** ने जो ज्ञान प्राप्त किया वह परवर्ती वर्षों में उन्हें प्रेरणा प्रदान करता रहा। अपनी साहित्यिक रचनाओं में, विशेषतः अपनी बालोपयोगी लोक-कथाओं में उन्होंने इस ज्ञान का सम्यक् उपयोग किया है।

तेजपुर से **बेजबरुवा** के पिता उत्तर **लखीमपुर** आये, जो घाटी में और भी ऊपर को स्थित है। बालकों के मित्र, हितैषी और दिग्दर्शक के रूप में रविनाथ अब भी परिवार के साथ थे। अपनी आत्म-कथा में **बेजबरुवा** ने इन सज्जन का अत्यन्त प्रफुल्लकारी रेखाचित्र अंकित किया है। वे बालकों के अच्छे ज्ञाता थे। उत्तर **लखीमपुर** में उनके निवास के पास ही एक सुनार रहता था, जिसका नाम था सिद्धेश्वर। बालकों को उससे बड़ा आनन्द मिलता। वे उसकी झोंपड़ी में जमा होकर गहने बनाने की उसकी पटुता को विस्मय और आतंक से निहारते रहते और उसके नन्हे-नन्हे औजारों को और उसकी जलती हुई भट्टी और धौंकनी को देखा करते। सुनार की भट्टी की यह लघु आभा लक्ष्मीनाथ के लिए विशद अजन्मा संभावना की आभा थी जो उनके वय प्राप्त करने पर उनके हाथों पल्लवित-कुसुमित हुई।

अक्सर बालक लक्ष्मीनाथ कोई ताँबे का सिक्का सुनार के पास ले जाते और

उससे उसका नन्हा-सा बर्तन बनवा लेते। मोहल्ले के मूर्तिकार दुर्गेश्वर शर्मा से उन्होंने सुतुली नामक वाद्य-यन्त्र बनवा लिया था। उसमें फूँक मारकर सुर निकालने में बालक को बड़ा आनन्द आता। सिद्धेश्वर सुनार की एक नन्ही बेटी थी जया, जो बालक लक्ष्मीनाथ के साथ खेला करती थी। वह तप्त स्वर्ण से निर्मित देवी प्रतिमा के समान सुन्दर थी। ऐसा लगता है कि नवयौवन के दिनों में बेजबरुवा ने मालती नामक जो लघु और मधुर कविता रची थी वह उनके शैशव की इस बीएट्रिस को ही सम्बोधित रही होगी—

> मैं उसकी हँसी में हँसूँगा
> उसके आँसुओं में रोऊँगा
> मैं अपनी प्रियतमा मालती के अंक में
> अपना शीश टेककर आँखें बन्द कर लूँगा ;
> बस शान्ति ही शेष रहेगी।

लक्ष्मीनाथ के पिता जब स्थानान्तरित होकर गौहाटी पहुँचे तभी पहली बार लक्ष्मीनाथ विद्यालय में भरती हुए, और इसके उपरान्त उनके पिता के अवकाश ग्रहण करके शिवसागर में बस जाने पर उन्होंनेवहाँ अपना अध्ययन जारी रखा।

उन दिनों बंगला प्रभाव कितना विपुल था इसका विवरण बेजबरुवा की आत्म-कथा में मिल जाता है। तत्कालीन सरकार ने असमिया बालकों के लिए आदर्श बंग विद्यालय के नाम से प्रारंभिक बंगला शालाओं की स्थापना की थी। लक्ष्मीनाथ ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा के शुरू में वर्ण-परिचय की जो पुस्तक पढ़ी थी वह किसी तर्कालंकार द्वारा रचित 'शिशु-शिक्षा' नामक एक बंगला पुस्तक थी। उन दिनों बंगला असम प्रदेश की मान्य प्रशासनिक भाषा थी और इसलिए विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के रूप में भी उसीका व्यवहार होता रहा। बादमें अमरीकी बैप्टिस्ट मिशन और आनन्दराम ढेकियाल फुकन (१८२९—१८५९) के अथक प्रयत्नों से असमिया को उसका स्थान प्राप्त हुआ था। तथापि प्रशासनिक भाषा के रूप में बंगला का प्राधान्य लगभग ५० वर्ष तक चलता रहा। माना यह जाता था कि असमिया स्वतंत्र भाषा न होकर बंगला की ही उपभाषा है। इसी भाषा-गत और सांस्कृतिक शोषण के विरुद्ध बेजबरुवा ने अपने साहित्य के माध्यम

से निरन्तर आन्दोलन किया था। यह आवश्यक था कि असमिया का पक्ष-समर्थन साहित्य-गत सर्जनात्मक प्रयत्न द्वारा किया जाता। बेजबरुवा का दृष्टिकोण रचनात्मक था।

लक्ष्मीनाथ के पिता हिन्दू संस्कारों के प्रति निष्ठावान थे; तथापि जीवन एवं सामाजिक समस्याओं के प्रति उनके दृष्टिकोण में एक ऐसी उदार चिन्ता का पुट था जो तर्क और प्रगति की ओर झुकता रहता था। बालक बेजबरुवा ने अपने पिता से यह भावना आत्मसात् कर ली थी। फिर भी वे अपने पिता की भाँति धार्मिक मामलों में कट्टर न थे। यद्यपि उन्होंने वैष्णव विषयों पर विपुल रचना की, तथापि बेजबरुवा ने यह तर्क कभी नहीं दिया कि वैष्णव भक्ति अन्य मतों से भिन्न अथवा विरुद्ध है। हाँ शाक्त पंथ से उनका मतभेद अवश्य था, पर वैष्णव और शाक्त मतों का यह मूलगत भेद तो ऐतिहासिक कारणों से रहा है।

बेजबरुवा ने कभी कोई बात केवल इसीलिए स्वीकार नहीं की कि वह परम्परासम्मत है। वे प्रत्येक तत्त्व को तर्क की कसौटी पर कसने के अभ्यासी थे। प्रगति के प्रवाह को रोकने की कोशिश करना यदि तर्क-विरुद्ध है तो किसी बात को उपयुक्त तर्क के बिना केवल इसलिए स्वीकार कर लेना कि वह 'प्रगति' कहलाती है, उतना ही निराधार और असंगत है। लक्ष्मीनाथ के पिता का भी यही दृष्टिकोण था और लक्ष्मीनाथ ने भी आजीवन यही दृष्टिकोण अपनाया। उनकी रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। 'प्रगति' का अर्थ यह नहीं है कि हम वर्तमान के संदिग्ध मूल्यों की खातिर अपने अतीत से कट जायँ; उसका अर्थ है अतीत और वर्तमान दोनों के सर्वोत्तम तत्त्वों का समन्वय।

यद्यपि दीनानाथ बेजबरुवा को अंग्रेजी का लेशमात्र भी ज्ञान न था, तथापि वे अंग्रेजी विद्या के विरुद्ध न थे। ब्रिटिश शासन और उसके महान् समर्थक लार्ड मैकाले के तत्वावधान में परिवर्तन की यह लहर अवश्यंभावी थी। वे अपने बच्चों को अंग्रेजी सीखने के लिए प्रोत्साहित करते थे और इसी उद्देश्य से उन्होंने उत्तरी लखीमपुर में एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना भी की थी। अपने ज़िले में वह अपने ढंग का पहला स्कूल था। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के लिए जो काम शिवसागर में अमरीकी बैप्टिस्ट मिशन ने किया था, वही उत्तरी लखीमपुर में दीनानाथ बेजबरुवा ने किया। इसके बड़े दूरव्यापी परिणाम हुए। बेजबरुवा ने अपने निबंध **'धर्म आरु ईश्वर'** (तत्त्वकथा) में जीवन के गौण तत्त्वों से सम्बन्धित आजकल की एकांगी शिक्षा को 'ईश्वर-विहीन शिक्षा' कहा है; वे चाहते थे कि

शिक्षा ईश्वर के प्रति आस्था में डूबी हुई रहे।

सन् १८८६ में **बेजबरुवा** ने शिवसागर के गवर्नमेण्ट हाई स्कूल से एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। तदुपरांत वे उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता गए जहाँ उन्होंने बीस वर्ष की आयु में सन् १८८८ में पहली आर्ट्स परीक्षा पास की और फिर सन् १८९० में कलकत्ता के जनरल एसेम्बली कालेज से स्नातक परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के बाद वे उच्चतर अध्ययन के लिए इंग्लैण्ड जाना चाहते थे। पर उनके परिवार के पुराणपंथी व्यक्तियों के विरोध के कारण यह संभव न हो सका। उन दिनों समाज में 'सात समंदर पार' जाना वर्जित माना जाता था।

उच्चतर अध्ययन के लिए इंग्लैण्ड जाने में असफल होकर **बेजबरुवा** ने कलकत्ता में ही एम० ए० और बी० एल० की तैयारी शुरू की। कानून के अध्ययन के लिए वे कलकत्ता के रिपन कालेज में भरती हो गए और आर्टीकिलड क्लर्क के रूप में कलकत्ता के उच्च न्यायालय में नियम से जाते रहे। इस चर्या ने उन्हें मानव-प्रकृति और जीवन का पर्याप्त अनुभव प्रदान किया; क्योंकि हाट-बाजारों के अतिरिक्त न्यायालय कदाचित् तत्संबंधी ज्ञान संग्रह करने के सर्वोत्तम साधन होते हैं। तथापि, **बेजबरुवा** एम० ए० और बी० एल० की अपनी परीक्षाओं में सफल न हो सके। जैसा कि उन्होंने अपनी आत्म-कथा में बताया है, बी० एल० की परीक्षा में असफल होने का कारण तो यह था कि परीक्षा हो चुकने पर कलकत्ता-विश्वविद्यालय के सिण्डीकेट ने उस वर्ष सफल होने के लिए आवश्यक प्राप्तांक का प्रतिशत बढ़ा दिया था। विश्वविद्यालय के इस निर्णय ने लगभग बीस विद्यार्थियों की चर्या को प्रभावित किया। **बेजबरुवा** ने कलकत्ता के उच्च न्यायालय में विश्वविद्यालय-सिण्डीकेट के विरुद्ध मुकदमा भी दायर किया, पर वे उसमें हार गए। इस प्रकार उनका वकील बनने का सपना चकनाचूर हो गया। कानून की वृत्ति से वंचित हो जाना **बेजबरुवा**-जैसे व्यक्ति के लिए दुर्भाग्य की ही बात थी। सामान्य संभाषण में हार्दिक एवं स्वभाव से अविचलित होने के कारण **बेजबरुवा**, रौबर्ट ब्राउनिंग के सम्बन्ध में कही गई **सैण्डर** और कार्लाईल की उक्ति के अनुसार, 'कानून, कूटनीति अथवा अन्य किसी बुद्धि-बल-परक वृत्ति में ख्याति प्राप्त कर सकते थे।'

फलस्वरूप, **बेजबरुवा** ने कलकत्ता में **भोलानाथ बरुवा** के साझेदार के रूप में लकड़ी का व्यापार आरंभ किया। तथापि **बेजबरुवा** साझेदार से भी ज्यादा

उनके छोटे भाई के समान रहते थे। दोनों ने मिलकर अपनी क्षमता के बल पर व्यापार में अच्छी उन्नति प्राप्त की। ११ मार्च १८९२ को बेजबरुवा ने कलकत्ता में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर की दौहित्री प्रजासुन्दरी देवी से ब्राह्म रीति से विवाह किया। इस अवसर पर ठाकुर-परिवार की ओर से उन्हें दस हजार रुपये का दहेज़ दिया गया जो उन्होंने लेने से इन्कार कर दिया। दहेज की कुरीति ने बंग-समाज को बुरी तरह ग्रस लिया था, पर असम समाज में उसका कोई प्रचलन न था। बेजबरुवा ने 'मोर जीवन सौवरण' नामक अपनी आत्म-कथा में दहेज के दुष्परिणामों पर प्रबल प्रहार किया है। जो हो, विद्यार्थी के रूप में बेजबरुवा ने केवल साधारण योग्यता का ही परिचय दिया, बी० ए० तक की परीक्षाओं में वे न तो गौरव के ही भागी हुए, न अपयश के।

बेजबरुवा ने अपना शैशव अपने वयोवृद्ध पिता की स्नेह-छाया के तले अत्यन्त अनुकूल पारिवारिक वातावरण में बिताया। उनका जीवन अत्यन्त सुचारु रीति से प्रवाहित होता रहा। वे पढ़ते, खेलते, उपासना करते और अन्य संस्कारों का पालन करते बड़े हुए। अरस्तू ने कहा है, 'सुखी जीवन का अर्थ है आत्म-निर्भरता।' बेजबरुवा अपने शैशव के आरम्भ से ही आत्मनिर्भर थे, अतएव सुखी थे। उन्होंने असमिया साहित्य-संसार पर राज्य किया तो इसलिए नहीं कि वे चन्द्रकुमार अग्रवाला प्रभृति अपने समकालीनों से अधिक प्रतिभा-सम्पन्न थे, वरन् इसलिए कि उसके उत्थान के प्रति उनकी प्रायः वैसी ही गहरी निष्ठा थी जैसी संगीत के प्रति बीठोविन की। उनका जीवन विशिष्ट चरणों का परिदृश्य था, और यह वैशिष्ट्य उनकी अनेक साहित्यिक कृतियों में ज्वलंत रूप से प्रकट हुआ है।

वस्तुतः बेजबरुवा का पोषण दो संसारों ने किया था : (१) वैष्णव संस्कृति और साहित्य के संसार ने; और (२) अंग्रेज़ी साहित्य और उदार चिन्तन के संसार ने। किशोरावस्था में वे अपने माता-पिता के साथ कमलाबाड़ी आदि वैष्णव सत्रों की यात्रा करते रहे थे। उसकी सांस्कृतिक प्रेरणा ने तो उनको प्रभावित किया ही था, उनके पारिवारिक पुस्तकालय में संगृहीत नैतिक-धार्मिक ग्रंथों की पाण्डुलिपियों और पोथियों ने भी उनको बहुत प्रभावित किया। उनके पिता दीनानाथ बेजबरुवा स्वयं ही सन्त कवि शंकरदेव (१४४९—१५६१) की जीवनी 'गुरुचरित' लिख चुके थे। उसीकी प्रेरणा से बेजबरुवा ने परवर्ती वर्षों में 'श्री शंकरदेव' और 'महापुरुष शंकरदेव आरु माधवदेव' नामक जीवनियों की

रचना की।

रिपन कालेज कलकत्ता की तृतीय वर्ष बी० ए० की कक्षा में अध्ययन करते समय **बेजबरुवा** को पाल्ग्रेव का 'गोल्डन ट्रैज़री ऑफ़ लिरिक्स' का परिचय प्राप्त हुआ, जो उन दिनों कालेज के पाठ्यक्रम में समाविष्ट थी। इस प्रकार **बेजबरुवा** बाइरन, कीट्स, शैली आदि अंग्रेजी के स्वच्छन्तावादी युग के कवियों के 'स्वर्णिम लोक' में प्रविष्ट हुए। इस संसर्ग ने उनके किशोर ग्रहणशील मन पर अमिट छाप अंकित कर दी। विद्यार्थी के रूप में बेजबरुवा का जीवन उदग्र बौद्धिकता से आप्लावित था। रंगमंच के उत्साही दर्शक और रवीन्द्रनाथ के पाठक होने के अतिरिक्त वे नाना विषयों के ग्रंथों और पत्र-पत्रिकाओं का पारायण करते रहते थे और प्रमुख व्यक्तियों की वक्तृता-सभाओं में नियमित रूप से जाते रहते थे। अन्य कुशाग्र-बुद्धि छात्रों की भाँति वे भी उनके भाषणों के मुख्य अंशों को टीपते रहते थे और उन्हें कण्ठस्थ कर लेते थे।

अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजी साहित्य ने **बेजबरुवा** के मन को मथ डाला और उनके समक्ष संभावनाओं के समृद्ध क्षितिज उद्घाटित कर दिए। उन्होंने गहन प्रयत्न से अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य दोनों के सौन्दर्य को ग्रहण किया और आत्मसात् कर लिया। सन् १८९० से १९३० तक के क्रान्ति युग को, जिसे हम अपरिभाषित दिशाओं का युग कह सकते हैं, **बेजबरुवा** ने एक अभिज्ञान और अन्विति प्रदान की। यह उक्ति सही है कि हमारे साहित्य के इतिहास में यह विशिष्ट काल '**बेजबरुवा** युग' के नाम से अभिहित होता है, क्योंकि **बेजबरुवा** ने जो कुछ भी लिखा उसमें युग का स्पन्दन प्रतिबिम्बित होता रहा। फ्रांसीसी साहित्य में विक्टर ह्यूगो की भाँति हमारे साहित्य के ये वरेण्य कृती अपने युग के केन्द्रीय ज्योतिस्तंभ थे।

चन्द्रकुमार अग्रवाला (१८६७—१९३८) और हेम गोस्वामी (१८७२—१९२८) जैसे अपने विख्यात समकालीनों की भाँति ही **बेजबरुवा** जिस चिन्तन-जगत् के प्रबल समर्थक थे उसके क्षितिजों की ओर असम को जिस बौद्धिक जीवन ने उन्मुख किया उसका स्नायु-केन्द्र था कलकत्ता। यह स्वाभाविक ही था। कलकत्ता से ही सन् १८८९ में **'जोनाकी'** पत्रिका का प्रकाशन हुआ था जिसे आधुनिक असमिया साहित्य का अग्रदूत कहा जाता है। उसके सम्पादक और स्वामी थे चन्द्रकुमार **अग्रवाला**। इस पत्रिका को **बेजबरुवा** का सक्रिय सहयोग और सम-र्थन प्राप्त था। वस्तुतः **बेजबरुवा** का छद्मपात्र **कृपावर बरुवा** सबसे पहले इसी

पत्रिका के पृष्ठों पर प्रकट हुआ था, उसके अस्तित्व के दूसरे वर्ष।

बेजबरुवा के तत्वावधान में ही २५ अगस्त, १८८८ को उस 'असमिया भाषा उन्नति-साधिनी सभा' का जन्म हुआ जिसने असमिया साहित्य के लिए बड़े उत्साह और उल्लास का वातावरण रच दिया था। यह साहित्य-सभा एक शनि-वारीय अध्ययन-चक्र के रूप में थी, जिसे कलकत्ता के असमिया छात्रों ने आयोजित किया था। उसके जन्म के वर्ष बेजबरुवा ने ही उसके मंत्री-पद का कार्य किया। १८८९ के 'जोनाकी' में 'असमिया भाषा उन्नति-साधिनी सभा' के लक्ष्य प्रका-शित हुए थे। वे हैं : (१) असमिया भाषा और साहित्य का विकास करना; (२) प्राचीन पाण्डुलिपियों का संग्रह और प्रकाशन करना; (३) विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के रूप में असमिया को मान्यता दिलाने के लिए आन्दोलन करना; (४) साहित्यिक उपयोग के लिए भाषा का मानकीकरण करना; (५) वैष्णव साहित्य की टीकाओं और अनुशीलनों का संकलन करना; (६) असम के सामाजिक-राजनीतिक और धार्मिक इतिहासों का संकलन करना; (७) संस्कृत ग्रंथों का असमिया में अनुवाद करना; और (८) असमिया में समाचार-पत्र और पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करना।

कलकत्ता में ही कतिपय देशभक्त असमिया छात्रों द्वारा उत्पन्न साहित्यिक वातावरण के फलस्वरूप शेक्सपियर के नाटक 'द कामेडी ऑफ ऐरर्स' का अस-मिया में अनुवाद हुआ। इसके सम्बन्ध में 'असमीज लिटरेचर'[1] का कथन है : "हमारे नाटक पर पाश्चात्य शिल्प का निर्भ्रान्त संघात कब हुआ इसकी कोई निश्चित तिथि बताना तो कठिन है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका प्रारंभ शेक्सपीयर के 'द कामेडी ऑफ ऐरर्स' के अनुवाद 'भ्रम-रंग' से ही हुआ। यह अनुवाद कलकत्ता में लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा के निर्देशन में आर० डी० बरुवा, रत्न-कान्त बरकाकती, जी० बरुवा और जी० एस० बरुवा ने मिलकर किया था। यद्यपि शेक्सपियर के इस अनुवाद के माध्यम से पाश्चात्य नाटकीय शिल्प का समावेश तो कर दिया गया, तथापि अतुकांत पद्य का ग्रहण अभी बाकी था। 'भ्रम-रंग' गद्यानुवाद है। कल्पनाशील रूपान्तरण और कौशल द्वारा अनुवादित नाटक के कार्य-व्यापार को स्थानिक घटनास्थल दिया गया है, और उसके पात्रों पर भी स्थानीय रंग चढ़ाया गया है।" इस अनुवाद ने हमारे साहित्य में नूतन नाटक पर दूर-दूर तक प्रभाव डाला था।

१. हेम बरुवा : असमीज़ लिटरेचर, नेशनल बुक ट्रस्ट, १९६५

शैशव के शान्त सम्पर्क से **बेजबरुवा** ने जो कुछ सीखा और उपलब्ध किया वह उनकी स्मृति में तो सुरक्षित था ही, घर से दूर रहकर वह स्फूर्तियुक्त साहित्यिक मुहावरों में पुनः निरूपित और अभिव्यक्त भी हुआ। विल ड्यूरेण्ट के अनुसार, समय और दूरी के झीने पट में से देखने पर पुरातन स्मृतियाँ नए आयाम और रूप ग्रहण कर लेती हैं। यह सच है कि **बेजबरुवा** का लालन-पालन सामाजिक रूप से पुरातनपंथी वातावरण में हुआ था, पर जब बेजबरुवा के प्रवास-काल में कलकत्ता के पराये अपितु उदार वातावरण में उनके बंधन ढीले पड़े, तो इस उन्मोचन की परिणति अतिरेक की प्रतिक्रियाओं में नहीं हुई।

उनके वयस्क काल का पराया परिवेश अधिक दिनों पराया न रहा। तथापि **बेजबरुवा** कभी उस परिवेश में डूबे नहीं। उल्टे, इस सम्पर्क का उन पर दुधारा प्रभाव हुआ। उसने उनकी प्रज्ञा और प्रबोध को भी तीक्ष्ण किया; और साहित्य के माध्यम से असमिया जनों की सेवा करने की उनकी स्वाभाविक इच्छा में एक नया आयाम भी जोड़ दिया। बेजबरुवा सर्वोत्तम और प्रबलतम अर्थ में सांसारिक व्यक्ति थे; उनकी प्रतिभा की दृढ़, सशक्त जड़ें यथार्थ जीवन में बहुत गहरे तक गई थीं। उनका हृदय सुदृढ़ था जिसका जीवन-दर्शन रौबर्ट ब्राउनिंग की ही भाँति बलिष्ठ आशावाद में निहित था; जीवन के उतार-चढ़ाव उन्हें निराश अथवा निरुत्साह नहीं कर पाते थे। हमारा जीवन एक यूनानी नाटक की भाँति होता है जिसमें चरितनायक को द्वन्द्व एवं संघर्ष में से गुजरते हुए शिखर पर पहुँचकर अपना सामर्थ्य सिद्ध करना पड़ता है। **बेजबरुवा** यह भली भाँति जानते थे और उन्होंने इस आदर्श की उपलब्धि के लिए आवश्यक उत्साह का भरपूर परिचय दिया।

बेजबरुवा की समस्त रचनाएँ देशभक्ति और सामाजिक आदर्शवाद से ओत-प्रोत हैं। उनमें असमिया जीवन को सर्वोत्तम अभिव्यक्ति मिली है। एक शब्द में, बेजबरुवा उदग्र रूप में स्थानीय थे; उनके साहित्य का प्रधान उद्देश्य था सुधी जनों के मन में असमिया जीवन एवं संस्कृति के पुनरुत्थान के संदर्भ में एक नए सामाजिक मानदण्ड का विकास करना। यह मुख्य रूप से उन्हींके प्रयासों का फल था कि असम ने अपनी निजी इयत्ता के वैशिष्ट्य को पहचाना और ऐसी भाषा एवं ऐसे साहित्य में बोलना शुरू किया जो उसकी प्रतिभा के स्वभाव के अनुकूल था।

बेजबरुवा की देश-भक्ति-परक रचनाओं ने अपनी अन्तर्निहित क्षमता में

ग्रास्था के जिस गर्व को ग्रौर ग्रात्म-प्रतीति की जिस ग्राभा को स्वर दिया है वह ग्रत्यन्त प्रखर ग्रौर प्रचुर है। बेजबरुवा ने न तो किसी महाकाव्य की रचना की है, न 'जयमति कुँवरि' ग्रौर 'चक्रध्वजसिंह' के ग्रतिरिक्त किसी महान् नाटक की; तथापि उन्होंने देश-भक्तिपूर्ण कृत्यों के सम्बन्ध में जो उदात्त ग्रौर विपुल रचना की है वह उन्हें निश्चित रूप से ग्रमरत्व का भागी बनाती है। मैथ्यू ग्रार्नाल्ड को तो उनके जनों ने मरणोपरान्त ही ग्रपना 'पथ-प्रदर्शक, प्रतिनिधि ग्रौर गौरव' माना था, परन्तु बेजबरुवा ग्रपने जीवन-काल में ही ख्याति ग्रौर प्रतिष्ठा ग्रर्जित कर चुके थे। उनके प्रखर ग्रौर दूरगामी गीत-बाण उनके जनों को बहुत भाते थे।

बेजबरुवा की साहित्यिक कृतियाँ उनके शैशव की क्रीडा-भूमि 'मनोरम ग्रसम' के विरल ग्रौर शस्य-श्यामल प्रदेश के रंग में पगी हुई हैं। उन्होंने ग्रपनी भूमि की वास्तविक सुषमा का उद्घाटन किया है, उसकी मुक्त ग्रधित्यकाग्रों का उसकी मुक्त उपत्यकाग्रों का। उसकी निर्मल ग्रबोध छवियों को उन्होंने सूक्ष्म, किन्तु सरल विवरणों द्वारा ग्रंकित किया है। उनके इन्हीं गुणों के योग के कारण हम उनके सम्बन्ध में नार्वेजी लेखक जार्नसन के प्रति ब्रैण्डेज के शब्दों में यह कह सकते हैं कि 'उनके देशवासियों की सभा में उनका नामोल्लेख राष्ट्रीय ध्वजा फहराने के समान है।'

२६ मार्च, १९३८ को डिब्रूगढ़ में बेजबरुवा का देहान्त हुग्रा। ब्रह्मपुत्र के जिस सैकत तट पर डिब्रूगढ़ स्थित है वहीं उनका ग्रन्तिम संस्कार किया गया। फ्रायड के प्रति डब्ल्यू० एच० ग्रॉडेन के शब्द उधार लेकर हम बेजबरुवा के सम्बन्ध में कह सकते हैं कि :

> यद्यपि कभी-कभी वे भूल भी कर बैठते थे ग्रौर ग्रनर्गल
> कथन भी ; पर ग्रब वे हमारे लिए निरे एक व्यक्ति
> नहीं, एक वैचारिक परिवेश हैं।

निबन्धकार के रूप में

जिस प्रकार साहित्यिक अनुशीलन और साहित्य-समीक्षा आदि निबन्ध की अन्य विधाएँ पाश्चात्य प्रभाव की सन्तान हैं उसी प्रकार व्यक्तिपरक निबन्ध भी। सर्जनशील लेखक के रूप में **बेजबरुवा** का सर्वोत्तम अवदान व्यक्तिपरक निबन्ध की विधा में ही है। उनकी लेखन-शैली व्यक्तिगत थी। ऐसी शैली कभी-कभी अल्प-प्रतिभ हाथों में निरी जोड़बन्दी करने लग जाती है। किन्तु **बेजबरुवा** के व्यक्तिपरक निबन्ध सांसारिक नीति-ज्ञान के अनमोल हीरे हैं जिनकी भाषा अनिवार्यतः हास्य और उपदेश की सृष्टि करती है। बर्गसाँ के अनुसार 'समस्त हास्य अपने-आपमें सामाजिक होता है।' किन्तु **बेजबरुवा** के लिए हास्य व्यक्तिगत भी हो जाता था।

इस वर्ग के निबन्ध, वास्तविक अर्थ में 'मन की अनिबद्ध उड़ानें' अपनी प्रकृति से ही अवान्तर कथन का रूप ले उठते हैं, क्योंकि उनका दृष्टिक्रम, जैसा कि रौबर्ट लिण्ड ने संकेत किया है, 'कल्पनातीत रूप से व्यापक हो सकता है।' कभी वह प्रवचन के निकट पहुँच जाता है तो कभी कहानी के। वह आत्म-कथा का एक खण्ड भी हो सकता है, और निरर्थक शब्द-जाल भी। वह व्यंग्य-प्रधान भी हो सकता है, अपकथन भी हो सकता है और अतिभावुक भी हो सकता है। उसका विषय 'प्रलय के दिन से लगाकर कैंची तक कुछ भी हो सकता है।'

हाइने ने एक बार कहा था कि जीवन अपने तल में इतना गहन-गंभीर होता है कि यदि उसमें विनोद का मिश्रण न हो तो वह असह्य हो जाय। **बेजबरुवा** क्यों हँसते थे ? क्योंकि वे हँसने की स्थिति में थे। वे इसलिए नहीं हँसते थे कि हाइने ने जीवन की 'गहन-गभीरता' के बारे में जो कुछ कहा है उसे वे मानते थे, वरन् इसलिए कि **बेजबरुवा** का जीवन इस प्रकार का था कि उन्होंने शैशव से अन्त तक कभी जाना ही नहीं कि दुर्भाग्य अथवा दुरवस्था क्या होती है।

१९१४—१८ के युद्ध के पश्चात् अंग्रेज़ी साहित्य में लेखकों के एक विपुल वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्हें 'विडम्बनावादी' कहते थे। जिस अर्थ में हमारे सम-कालीन ये अंग्रेज़ी लेखक 'विडम्बनावादी' थे, उस अर्थ में **बेजबरुवा** 'विडम्बना-वादी' न थे। उनकी रचनाओं में जो विडम्बना है वह पूर्ववर्ती अंग्रेजी लेखकों के प्रकार की है। **बेजबरुवा** के गुण अर्द्ध-आलोक में नहीं हैं, वे आत्म-प्रकट और

स्पष्ट हैं : उनका साहस, उनकी प्रज्ञा, उनकी मुक्तहृदयता और जीवन के प्रति उनका अनुराग ।

डेविड एस० जार्डन का मत है कि 'समाज का यह कर्त्तव्य हो सकता है कि वह दण्ड दे, पर उसका इससे भी बड़ा कर्त्तव्य यह है कि जहाँ पुनरुद्धार की संभावना हो वहाँ वह पुनरुद्धार भी करे।' **बेजबरुवा** के व्यक्तिपरक निबन्ध स्वर और भंगिमा में कभी-कभी व्यंग्यपूर्ण और कटु होने पर भी मुख्यतः 'पुनरुद्धार' की मुद्रा में ही रचे गए। एक भिन्न संदर्भ में कहे गए मैथ्यू आर्नाल्ड के शब्दों का उपयोग कर हम उनके सम्बन्ध में कह सकते हैं कि :

> उन्होंने एक-एक घाव की, एक-एक कमजोरी की जाँच की
> और उस पर अपनी उँगलियाँ रख दीं
> और कहा—यही तुम्हारी व्याधि है ।

बेजबरुवा के लिए व्यंग्य मुख्यतः सामाजिक भूल-सुधार का ही अस्त्र था। कैथलीन रेने कहती हैं: 'व्यंग्यकार वह है जो प्यार भी करे और घृणा भी, जो केवल घृणा करता हो वह व्यंग्यकार नहीं है।' **बेजबरुवा** ने कभी 'घृणा' नहीं की, और उनकी व्यंग्यात्मक रचनाओं में ऊपर से देखने पर जो घृणा प्रतीत होती है उसके नीचे अपने जनों के प्रति अनुराग का अजस्र स्रोत प्रवाहित मिलता है। और यदि रैने ने व्यंग्यकार की जो सामान्य परिभाषा दी है वह सही है तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि **बेजबरुवा** उच्चकोटि के व्यंग्यकार थे। यद्यपि कभी-कभी उनका मध्यवर्गीय अहं ऊपर आ जाता है, तथापि मानवीय कमजोरियों और त्रुटियों का उनका विश्लेषण उच्चता के रंग से अनुरंजित नहीं है, जैसा कि प्रायः अन्यत्र देखा जाता है। संक्षेप में, **बेजबरुवा** में मानवीय जीवन में उपस्थित विचित्र विसंगतियों को हँसी में उड़ा देने की क्षमता निहित थी।

वस्तुतः **बेजबरुवा** के व्यक्तिपरक निबन्धों में लेखक के हर्ष, गर्व और पूर्वाग्रहों का सार समाविष्ट है, जो बहुधा प्रच्छन्न ही रहता है, और कभी-कभी किसी उद्देश्य विशेष के अनुरूप कृत्रिम रूप से विकृत भी हो जाता है। उदाहरण के लिए, '**कृपावर बरुवार काकोटोर टोपला**' में एक ऐसे अनोखे और विवादी प्रकार का हास्य है जिसके विनोदपूर्ण संसार को व्याघात पहुँचाने वाला कोई बे-मेल स्वर नहीं है। व्यक्तिपरक निबन्ध सामान्यतः तथाकथित 'उच्च कामदी' के प्रकार के होते हैं जो बहुधा 'प्रकृतवाद' के नाम से अभिहित कोरे प्रति-

बिम्बित विचारों की अपेक्षा जीवन की आलोकमयी व्याख्या उपस्थित करते हैं। सच तो यह है कि **बेजबरुवा** की रचनाओं में निहित आधारभूत और विपुल सामाजिक अन्तर्दृष्टि उन्हें स्वर और भंगिमा में कुत्सित प्रकृतवाद के स्तर से कहीं ऊपर उठा देती है। **कृपावर** प्रभृति **बेजबरुवा** के पात्र फाल्स्टाफ के अनुरूप हैं, बोबाडिल के अनुरूप नहीं। सृजन और निर्माण में सदैव अन्तर होता है। जहाँ तक **बेजबरुवा** के पात्रों का सम्बन्ध है, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें सृजन की अपेक्षा निर्माण में अधिक प्रभुत्व प्राप्त था। पात्रों के वास्तविक सृजन के लिए उनके गंभीर नाटकों पर ही दृष्टिपात करना पड़ता है।

यह भी सच है कि **बेजबरुवा** के व्यंग्य-पात्र, विशेष रूप से उनके प्रहसनों के पात्र, बहुधा तर्कहीन प्रतीत होते हैं। और इस कारण शायद यह कहना अतिशयोक्ति न हो कि साधारणजन जिसे तर्क के रूप में जानते हैं वह उनके हाथों में पड़कर आत्महत्या कर लेता है। उदाहरण के लिए, **'काकोटोर टोपला'** में समाविष्ट टकसाली पात्र ज्यों ही अपने स्रष्टा के हाथों रूप ग्रहण करने लगते हैं त्यों ही लेखक उन्हें बिखेर देता है। इस खींच-तान के कारण ये पात्र प्रहसन के पात्रों से भी अधिक विचित्र आकार ग्रहण करने लग जाते हैं। फलस्वरूप हम यह देखकर चकित रह जाते हैं कि जिसकी रचना घोषित रूप से प्रहसन के लिए हुई है वह गूढ़ रूप से विनोदपूर्ण भी है।

बेजबरुवा के व्यक्तिपरक निबन्धों से भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जीवन के प्रति उनका सामान्य दृष्टिकोण संशयात्मक था। यह 'संशय'-पूर्ण दृष्टि लेखकीय स्वभाव की विशेषता होती है। मोटे तौर पर यह जीवन के प्रति व्यक्ति के गहरे आग्रह को अमूर्त्त रूप में प्रेम के माध्यम से अधिक व्यक्त करती है, जैसा कि डल्यू० एच० आडेन ने किया था, मूर्त्त रूप में घृणा के माध्यम से नहीं। वस्तुतः विद्वेष और अनुराग उस व्यक्ति की जीवन-स्फूर्ति होती है जो अत्यधिक जीवन्त होता है। **बेजबरुवा** अपने आधारभूत परिवेश के प्रति अत्यधिक 'जीवन्त' तो थे, तथापि ठीक-ठीक देखने पर लगता है कि विद्वेष और अनुराग का सिद्धांत उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं था।

अनातोल फ्रांस ने वाल्तेअर के सम्बन्ध में कहा था : 'वाल्तेअर की उँगलियों में आकर लेखनी खिलखिलाकर दौड़ने लगती है।' यही बात बेजबरुवा के बारे में भी सच है, उनकी उँगलियों में आकर लेखनी खिलखिलाकर दौड़ने लगती थीं। वे

हमारे साहित्यिक परिदृश्य पर प्रकट हुए, और ब्रान्डेस के शब्दों में, 'हँसी से ध्वंस करने लग गए।' वैदग्ध्य को सामान्यतः 'आध्यात्मिक विद्युत्' कहा जाता है। साधारण बोल-चाल में जिसे हास्यरस कहते हैं उसकी तुलना में उसमें एक अनोखी आकस्मिकता और तेजी होती है, एक भिन्न प्रकार की दीप्ति, और एक अपार्थिव बेधकता। संक्षेप में हास्यकार की कला सृजनात्मक कला होती है। बेजबरुवा में यह 'कला' तो थी, पर 'आध्यात्मिक विद्युत्' वाली नहीं।

बेजबरुवा के काल में समाज कतिपय विदेशी रूपों में खण्डित हो रहा था, और उसे पुनरुज्जीवित करने का एक-मात्र उपाय यही था कि वर्तमान की पृष्ठ-भूमि में अपनी संस्कृति के आन्तरिक मूल्यों का सम्यक् अभिज्ञान और साक्षात्कार किया जाय। यह आधारभूत भाव बेजबरुवा की प्रायः समस्त रचनाओं का संचालक स्रोत था। प्रतिभा-सम्पन्न चिकित्सक की भाँति बेजबरुवा ने विदेशी प्रभावों से ग्रस्त समाज के रोग का निदान किया, विशेषतः बंगाल के मध्यवर्गीय समाज का, जो अधीत तो होता था पर संवेदनशील नहीं। बेजबरुवा के रेखाचित्र नितान्त काल्पनिक हो सकते हैं, यों तो इलियड और ओडेसी भी काल्पनिक ही हैं। पर जिस प्रकार हम इन ग्रंथों से यूनानी आचार-विचारों के सम्बन्ध में बहुत-कुछ जानकारी पा जाते हैं उसी प्रकार हम बेजबरुवा के रेखाचित्रों से उनके समय के संक्रान्तिकाल में साँसें लेते असमिया जनों के, और विशेषतः निम्न मध्यवर्गीय समाज के जनों के, आचार-विचारों के सम्बन्ध में बहुत-कुछ जान सकते हैं। इन रेखाचित्रों का प्राण है तत्कालीन यथार्थ जीवन।

यदि आल्डुस हक्स्ले पर विश्वास किया जाय तो चौसर ने प्रतिवाद नहीं किया था, वे स्वीकृति के कवि थे। बेजबरुवा चौसर से भिन्न थे, उन्होंने प्रतिवाद के बिना स्वीकार नहीं किया। उनके व्यक्तिपरक निबन्धों से अनुप्राणित वातावरण में आवेग परिहास में शरण खोजते हैं और आवेश एक ऐसे संशयवाद में ओझल हो जाता है जो हास्य से ओत-प्रोत है। जियोफी वुलो कहते हैं: 'वह (व्यंग्यकार) जिसका भी स्पर्श करता है उसी पर हावी हो जाता है और उसकी सफलता की एक निशानी यह भी है कि वह जीवन एवं व्यक्तियों के अपने अनोखे अभिज्ञान को किस मात्रा में संप्रेषित कर पाता है।' बेजबरुवा की व्यंग्य-कृतियों में किसी एक प्रधान भाव अथवा विचार की प्रबलता के वशीभूत होकर विभिन्न सूत्र एक हो जाते हैं। यह शिल्पगत युक्ति सामान्यतः व्यंग्यविधा की प्राण होती है। और इनमें से प्रत्येक सूत्र उस भावना से अनुप्राणित है जिसे हम 'सामाजिक

चेतना' कहते हैं। संक्षेप में, असमिया साहित्य के इतिहास के अहमोत्तर युग में हमारा साहित्य वर्षों तक जिस जड़ता का शिकार रहा था उसमें **बेजबरुवा** ताजी हवा के झोंके की भाँति प्रकट हुए।

तथापि **बेजबरुवा** को उनकी साहित्यिक सृष्टि के प्रतिरूप के समकक्ष रखना उनके व्यक्तित्व को संकीर्ण दायरों में सीमित कर देने के बराबर है। अधिक-से-अधिक उन्हें ऐसे समालोचक के समक्ष रखा जा सकता है जो क्षुद्र खामखयालियों से मुक्त हो, जिसने सामाजिक प्रतिरूपों की विशेषताओं का उद्घाटन करके सूक्ष्म कौशल एवं निष्ठा से उनका पुनः सृजन किया हो। उन्होंने व्यक्तियों को अपने परिवेश में चित्रित करने का प्रयत्न किया और उन्हींकी जुबानी उनकी कहानी कही।

हम निर्भूल रूप में कह सकते हैं कि **बेजबरुवा** का हास्य मृदु नहीं है। उसमें अट्टहास का-सा गुण है और कहीं-कहीं तीक्ष्ण व्यंग्य भी। संक्षेप में **बेजबरुवा** विशुद्ध विदूषक न थे, और उनकी उक्तियों का विनोद नितान्त आनुषंगिक है। **बेजबरुवा** की रचनाओं का पाठ करने पर लगता है कि वे ऐसी 'दर्पण-जैसी मेधा' वाले व्यक्ति थे जिसे उनका अट्टहास भी धुँधला अथवा आच्छन्न न कर पाता था। उन्होंने नाना विषयों पर रचना की; सच तो यह है कि उनका कृतित्व केवल साहित्यिक गुण के लिए ही नहीं वरन् एक ऐसी मानसिक मुद्रा के लिए भी उल्लेखनीय है जिसे उनके दृष्टिकोण की विसंगतियाँ भी कोई क्षति न पहुँचा सकीं। विशेष रूप से, चुटीला हास्य उनके व्यक्तिपरक निबन्धों का आधार और प्राण है। तथापि उनकी कृतियों से जीवन का गहरा परिज्ञान परिलक्षित होता है।

उनके प्रकट चुटीले हास्य के तले, बेजबरुवा की वास्तविक भावना भी सूक्ष्म रूप में अवस्थित मिलती है जो सारतः समीक्षात्मक थी। निस्संदेह वे कभी-कभी प्रबल प्रहार भी कर बैठते थे, तथापि 'श्री शंकरदेव', 'श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव', 'तत्त्व-कथा' आदि अपनी गंभीर नैतिक-दार्शनिक कृतियों के अतिरिक्त अन्यत्र वे अनिवार्यतः विस्तारप्रिय और निर्बन्ध मिलते हैं। विशेषतः अपने व्यक्तिपरक निबन्धों में। हास्य वैष्णव युग से ही असमिया साहित्य का अंग रहा है। वैष्णव युग का 'विनोदपूर्ण, जीवन्त और आह्लादकारी' **भीमचरित** इसका अच्छा दृष्टान्त है। 'रुक्मिणीहरण' आदि नाटकों से प्रमाणित है कि स्वयं शंकरदेव (१४४९—१५६९) भी उसके प्रभाव से अछूते नहीं रह सके थे। **बेजबरुवा** की नवीनता यह थी कि उन्होंने हास्य को साहित्य-सृजन की एक

स्वतन्त्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके हास्य की दो आधारभूत विशेषताएँ हैं : (१) हास्य के लिए हास्य ; और (२) व्यंग्योक्तियों से मिश्रित हास्य।

बेजबरुवा के परिचित विवर्तन और विस्तारप्रियता के बावजूद उनकी रचनाओं में ऐसा कुछ नहीं है जो उनके दृष्टिकोण की उदारता, विषय-क्षेत्र के विस्तार एवं शैली की असंदिग्धता के प्रति पाठक की सराहना को कम करता हो। उनकी उक्तियों एवं वर्णनों में जीवन का वैविध्य समाया हुआ है। कुछ विशिष्ट व्यक्तियों और सामाजिक प्रथाओं के प्रकट खोखलेपन को बेजबरुवा जिस संयमित क्षोभ से देखते और विश्लेषित करते हैं उसे समझना कठिन नहीं है। सक्षम राष्ट्रीय शक्ति से युक्त होकर भी बेजबरुवा अपने दृष्टिकोण में निरन्तर वैचारिक स्वतंत्रता और तटस्थता का भाव बनाये रहते हैं।

बेजबरुवा की उपलब्धि में एक ऐसे समाज-दर्शन की अन्विति है जो समाज का पुनरुद्धार करके उसे सम्बोधि का विशद रूप देना चाहता हो। उनका चित्रपट संकीर्ण नहीं है, न वह भव्यतारहित है। उसमें ऐसी शैली की अन्विति है जो व्यक्तियों की विस्तृत पंक्ति से संभाषण करती है और जो अपने उत्कृष्ट रूप में कान्तिमान है। बेजबरुवा का समाज-दर्शन न तो कोई वाद है, न कोई नारा—वह तो एक ऐसा निष्कर्ष है जो उन्होंने ऐतिहासिक विवरणों और सामाजिक गतिविधियों से अपने गंभीर उद्देश्य के लिए प्राप्त किया है। बेजबरुवा की शैली का वैविध्य बहुश्रुत है। तथापि जब हम उनकी रचनाएँ पढ़ते हैं तो यह स्पष्ट हो हो जाता है कि उन्होंने जो कुछ भी लिखा उसे कभी स्वाभाविकता से दूर नहीं होने दिया। वस्तुतः, बेजबरुवा कभी भी वादाग्रही न थे; वे प्रज्ञावान निरीक्षक थे। जो हो, उनकी व्यक्तिपरक निबन्ध-रचनाओं में रहस्यात्मकता का अथवा संदेशवाहकता का पुट क्वचित्-कदाचित् ही मिलता है। यही नहीं, यह भी उल्लेखनीय है कि उनके व्यक्तिपरक निबन्ध चैस्टरटनीय चारुलेखों के प्रकार के नहीं हैं. उनका अपना अलग रंग है।

बेजबरुवा द्वेष-भावना से रहित होकर लिखते थे, और यद्यपि उनकी चमड़ी काफी मोटी थी, यह कहना कठिन है कि अपनी रचनाओं में वे जो कटूक्तियाँ समाहित करते थे उन पर उन्हें कभी परिताप होता था या नहीं। उनकी प्रकृति में ईर्ष्या या डाह की क्षमता न थी, पर उनमें निर्मम उपेक्षा की क्षमता अवश्य थी। दृष्टि और अभिज्ञान की गहराई के कारण उनके प्रत्यक्ष प्रहार सामाजिक

विद्रूप के प्रदीप्त प्रमाण हैं। कहते हैं कि व्यंग्य अंतर्दृष्टि से जनमता है। बेजबरुवा के व्यक्तिपरक निबन्धों को पढ़कर एक ही भाव उठता है—विस्मित तृप्ति का भाव। तृप्ति का यह भाव वही लेखक दे सकता है जो बेजबरुवा की-सी विलक्षण योग्यता का धनी हो।

बेजबरुवा दुहरी कलम से लिखते थे। (१) बौद्धिक और तिर्यक्; एवं (२) स्वतःस्फूर्त और विनोद से उच्छलित, ऐसे विनोद से जो उच्छृंखलता और अनात्म बाहरी तड़क-भड़क की सीमा तक पहुँच जाता था। उनके व्यक्तिपरक निबन्ध यदि व्यावहारिक ज्ञान के पुटों के लिए विख्यात हैं तो उलझनभरी वाचालता के लिए भी। विनोद-वृत्ति बेजबरुवा का सबसे बड़ा हथियार थी जिसका वे बहुधा निर्मम होकर प्रयोग करते थे, यथा : 'भोकेन्द्र बरुवा' (जोनबीरी) में अथवा 'खाता दिमरु सत्राधिकार' (बुलनी) में। दूसरी ओर यह मान लेना भी गलत होगा कि उनके प्रहार ड्रायडन की भाँति निपट हिंसापूर्ण होते थे जो तमाचे की तरह बजते थे।

अधिक मूर्त्त ढंग से कहें तो बेजबरुवा के दृश्य और परिदृश्य, विवरण और संवाद—चाहे उनके प्रहसनों में अथवा व्यक्तिपरक निबंधों में—किसी ऐसे बैडमिण्टन मैच की तरह होते थे जिसमें चिड़िया तेजी से खिलाड़ी के पास से गुज़र जाती हो और उनसे हमें इस बात का बड़ा विशद और तीव्र बोध हो जाता है कि लगभग अर्द्धशताब्दी पूर्व के ब्राउनिंग के शब्दों में, 'उत्तेजित मस्तिष्क किस तरह झनझना उठते थे।' उनका एक छद्मपात्र, कृपावर बड़ुआ, बेजबरुवा के ही विनोदीपन का प्रक्षेपण प्रतीत होता है; बहुधा यह पात्र लेखक की ही भंगिमाओं को प्रकट करता मिलता है।

अपनी कुछ व्यंग्य कृतियों में बेजबरुवा ने बुद्धिहीनता की उस अपरिवर्तनीय शक्ति पर प्रहार किए हैं जो प्रायः प्रत्येक युग की विशेषता होती है। मोटे तौर पर, विशेष रूप से अपनी रचना 'काकोटोर टोपला' द्वारा बेजबरुवा ने निबन्ध का 'समाजीकरण' कर दिया और उसे दैनन्दिन जीवन की परिधि में लाकर उसे जनसाधारण के लिए आत्मीय और आनन्ददायक बना दिया। वस्तुतः, लैम्ब और डी क्विन्सी की ही भाँति उनके लिए भी निबन्ध अतिशय आत्माभिव्यक्ति का साधन बन गया। सब मिलाकर बेजबरुवा के लिए निबन्ध एक 'उन्नत प्रकार की पत्रकारिता' बन गया जिसने पत्रकारिता के उस अविकसित युग में विचारों और मंतव्यों को निरूपित और संकलित करने में बहुमूल्य योग दिया। बेजबरुवा

के हाथों व्यंग्य जगमगानेतो लगा, पर वह 'उग्र आक्रोश की ज्वलंत लपटों' के रूप में प्रस्फुटित कभी नहीं हुआ। इस लेखक ने जो भी आक्रोश व्यक्त किया वह न्यायोचित और सत्यानुकूल था और 'सत्य', वाट्किंस के शब्दों में कहा जाय तो, 'हीरे से भी प्रखर काट करता है।'

बेजबरुवा के व्यक्तिपरक निबन्धों के चार संग्रह हैं: **बरबरुवार काकोटोर टोपला, ओवतनी, बरवरुआर भावर बुड़बुड़नी** और **बररुबवार बुलनी**। इन निबन्धों का आधार हैं हास की लघु-लघु वीचियाँ जिनके तले समाज के प्रति लेखक का मूलभूत दृष्टिकोण सर्वथा निहित मिलता है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य था लेखक के अपने प्रबोध के अनुसार समाज का पुनरुज्जीवन। उदाहरण के लिए, **'एखन मुकलि चिठि' (ओवतनी)** नामक निबन्ध में अपने उपदेश पर स्वयं आचरण न करने वाले तथाकथित 'देशभक्त' वाक्वीरों के प्रति लेखक की कटुता तीक्ष्ण रूप से प्रकाशित हुई है जिसमें भीषण वचनाघात निहित है: 'इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि आप असमवासी हैं। असमवासियों की भाँति रहें। विदेशी रीति-नीति की नकल करना जरूरी नहीं है।···बहुतेरे (असमवासी) असमिया पत्र-पत्रिकाओं की खिल्ली उड़ाते रहते हैं।' यहाँ उनकी भाषा कटुता के शिखर पर पहुँच जाती है। नव असमिया बुद्धिजीवियों के दूषणों पर उन्होंने अन्यत्र कहीं भी ऐसा प्रबल प्रहार नहीं किया है।

इसी प्रकार अपने एक प्रकार के स्वप्नरूपक 'सामाजिक' (**काकोटोर टोपला**) में वे मिथ्या रूढ़िवादिता, जड़ नैतिकता, कृत्रिम देश-भक्ति और व्यक्तिगत अहम्मन्यता पर बड़े सबल और उग्र प्रहार करते हैं। असमिया भाषा से **बेजबरुवा** को सच्चा प्यार था, जो लोग उनकी क्षमता को तुच्छ बताने का प्रयत्न करते थे उन पर वे प्रहार करने से कभी न चूकते थे। वे भाषा-व्यवहार के मामले में शुद्धतावादी थे, पर जहाँ तक अन्य स्रोतों से शब्दों के आदान का सम्बन्ध है, वे बड़े ही उदारमना थे। गंभीर उद्देश्यपूर्ण अपने एक व्यक्तिपरक निबन्ध **'चिन्तार चकनैया' (बुलनी)** में **बेजबरुवा** उस वर्ग के जनों की सस्ती रुझानों और नकलची प्रवृत्तियों की खिल्ली उड़ाते हैं जो हर विदेशी चीज को अच्छा समझते हैं। ब्रिटिश राज्य के प्रारंभिक दिनों में बंगाल से सम्पर्क के कारण यह प्रवृत्ति जोर पर थी। इस निबन्ध में लेखक ने के० के० भट्टाचार्य (१८५३-१९३७) के शब्दों का उद्धरण दिया है। श्री भट्टाचार्य समाज को विकृत करने वाली इन प्रवृत्तियों के विरुद्ध प्रचण्ड आक्रोश व्यक्त करते थे।

वैसे तो हम **ओवतनी** को विविध विषयों का संकलन भी कह सकते हैं, तथापि उसमें समाविष्ट निबन्ध एक सुधारात्मक उद्देश्य से अनुप्राणित हैं। लेखक ने उनमें तत्कालीन असमिया चरित्र की विचित्रताओं की खिल्ली उड़ाई है और पड़ोस के बंगाली समाज की रीतियों को स्वीकार करने और प्रतिबिम्बित करने वाली प्रवृत्ति का विद्रूप किया है क्योंकि ये रीतियाँ न तो प्रेरणाप्रद थीं न आदर्शोन्मुख। बेजबरुवा ने इस बात पर एकान्त बल दिया है कि असमिया जीवन और समाज विशिष्ट और पृथक् हैं; और असमिया समाज को इसी आधारभूत तथ्य की प्रतीति पर अपना निर्वाह और विकास करना चाहिए। फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि **'बरबरुवार राजाहबर लक्ष्मण'**, **'हाँह चुरी मुकद्दमा'** आदि उनके अधिकांश व्यक्तिपरक निबन्ध अत्यन्त वैयक्तिक हैं। कुछ निबन्ध (यथा: **'कविता वेदना'**, **'दिमरु सत्राधिकार'**) स्पष्ट ही प्रहसनात्मक हैं। ये निबन्ध उत्कर्ष-विपर्यय के निबन्ध हैं।

जहाँ तक विषय-वस्तु का सम्बन्ध है, **काकोटोर टोपला** (१९०४) और **ओवतनी** (१९०९) से लेकर **बुलनी** तक परिधि का निश्चय ही विस्तार होता गया है। **बुलनी बेजबरुवा** के व्यक्तिपरक निबंधों का संकलन है जो प्रो० अतुल हाजरिका ने तैयार किया था और सन् १९५४ में साहित्य प्रकाश द्वारा प्रकाशित किया गया था। यहाँ प्रश्न उठता है: क्या इस संकलन में बेजबरुवा के मानस और कला-शिल्प का कोई निश्चित विकास परिलक्षित होता है ? मानस के विकास के तो इसमें निश्चित साक्ष्य हैं, जो कि स्वाभाविक ही है। अल्प विकास से विकास की एक प्रक्रिया होती है और बेजबरुवा इस प्रक्रिया से कभी च्युत नहीं हुए। पर यही बात उनके कलाशिल्प के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। उनका कलाशिल्प अचल नहीं था, तथापि वह गतिशील भी न था। बेजबरुवा में वैदग्ध्य का अभाव था—उस बौद्धिक विनोद का जो सामान्यतः दृष्टिकोणों को उत्तेजित करता है। उनकी विनोदपूर्ण रचनाओं में जो कुछ भी बौद्धिक तत्त्व था वह हँसी के पारावार में समाया रहता था ; और वह हँसी निर्विकल्प रूप से व्यंग्य के पुट से युक्त रहती थी। जैसा कि इन निबन्धों से प्रकट है, पदार्थों के प्रति सीधे दृष्टिकोण के स्थान पर उन्हें हास्यास्पद पक्ष अधिक आकर्षित करता था। लार्ड बायरन की भाँति तो नहीं, तथापि अपने निजी ढंग से बेजबरुवा एक विशिष्ट मुद्रा धारण किए रहते थे। जो कुछ भी वे लिखते थे उसमें मध्यवर्गीय अहं पर्याप्त रूप में उपस्थित मिलता था। निष्कर्ष रूप में यही कहना उचित होगा कि उनकी

रचनाओं में देशभक्ति एवं आवेगपूर्ण उत्साह का ज्वार होता था—एक ऐसा ज्वार जो कभी किसी भी परिस्थिति में धीमा नहीं पड़ा।

बेजबरुवा का हास्य प्रधानतया शाब्दिक था; उसकी प्रहारात्मक शक्ति मुख्यत: शब्दों के सामरिक नियोजन में निहित थी जिससे हँसी की उत्पत्ति अनिवार्य हो जाती थो। उनके हास्य की दूसरी विशेषता थी स्थितियों के सृजन में लेखक की अनोखी क्षमता, जो अनिवार्यत: हँसी जगाती थी। **बेजबरुवा** के लिए साहित्य, जैसा कि उनके व्यक्तिपरक निबन्धों से सिद्ध है, बोध और उत्थान के मध्य में अवस्थित था। मोटे तौर पर **बेजबरुवा** की स्वर-भंगिमा यह नहीं जताती कि वे द्वेष अथवा ग्लानि से जले जा रहे हैं। उससे तो यही प्रकट होता है कि उनमें गंभीर-से-गंभीर स्थितियों के सम्मुख भी हँसने की क्षमता थी। निस्संदेह इसके कारण उनके चित्रण में भारी व्याघात हो जाता था।

बेजबरुवा व्यक्तियों का चित्रण करते थे और उनकी विचित्रताओं के इर्द-गिर्द हँसी का ताना-बाना बुन देते थे परन्तु इस हँसी का अनिवार्य सम्पर्क उस सामाजिक परिवेश से होता था जिसमें ये व्यक्ति रहते-सहते थे। हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि यद्यपि आयु के साथ **बेजबरुवा** के मानस का गतिशील विकास होता गया तथापि उनके कला-शिल्प में इस गुण का प्रतिबिम्ब नहीं मिलता। यह तो सच है कि चरित्रों और स्थितियों पर उनके इस बलाघात में वक्तृत्व का अभाव न था, परन्तु निरा वक्तृत्व सौंदर्य-बोध का प्रमाण नहीं है। व्यक्तिपरक निबन्ध ऐसी कलात्मक विधा है जिसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है और जो असंगतियों, अवान्तर प्रसंगों, विचित्रताओं आदि-आदि को अपने में समेट लेती हैं। सौंदर्य-बोध की दृष्टि से, बेजबरुवा के अधिकांश निबन्ध मूल्यांकन की असंगति से ग्रस्त हैं; तथापि वे एक प्रकार से उन निबन्धों की भूमिका तैयार करते हैं जो **बुलनी** में संग्रहीत हुए और जो दृष्टिकोण एवं रूप-बोध का अधिक विकसित अभिज्ञान प्रकट करते हैं। इस सन्दर्भ में, '**फू**', 'विश्वरूप दर्शन', '**बरबरुवार** वेदान्त व्याख्या' आदि निबन्ध उल्लेखनीय हैं। यद्यपि ये हल्के-फुल्के ढंग से लिखे गए है तथापि दृष्टिकोण एवं अभिज्ञान की दृष्टि से वे स्फूर्तिप्रद और पठनीय हैं।

बेजबरुवा को पाखण्ड से घृणा थी। पर क्या उनकी सामाजिक आलोचना उन व्यक्तियों के मानस में अरुचि अथवा विक्षोभ उत्पन्न करने में समर्थ हुई जिनका उन्होंने विद्रूप और उपहास किया था? व्यंग्य वाण-वर्षा कितनी ही

भीषण क्यों न रही हो, लोग अपने अन्तर्तम में यह भली भाँति जानते थे कि बेजबरुवा उन्हें सच्चे हृदय से प्यार करते थे और यह प्रतीति ही उन्हें उनके प्रति सहिष्णु बना देती थी। बेजबरुवा लोगों के सामने दर्पण रख देते थे, लोग उसमें अपनी दृष्टि निहारते, अपनी विचित्र आकृति की एक-एक रेखा पहचानते और समझते थे कि दर्पण का एक-एक विवरण सही है। आलोचना के रूप में बेजबरुवा ने कुछ भी क्यों न कहा हो, उन्होंने असम के जनों को कभी निराश नहीं किया; वे अपने-आपको उन्हींका अंग मानते थे और उनके गुण-दुर्गुण दोनों से भली भाँति परिचित थे। बेजबरुवा के चिन्तन-मनन और लेखन में उस उदार प्रबोध का कभी अभाव न हुआ जो सहानुभूति को संभव बनाता है। बेजबरुवा के उपर्युक्त निबन्धों में से प्राय: प्रत्येक निबन्ध खामखयाली से भरपूर है, उनमें से कुछ में दृष्टिकोण और प्रवृत्ति की अतिभावुकता भी है। चारुलेख के प्रकार के निबन्ध सामान्यतया स्वर और प्रकृति में मनमाने ढंग पर चलते हैं, पर बेजबरुवा के प्रसंग में यह बात लक्षणीय है कि उनके हाथों मनमानी बहुधा असंभाव्य की सीमा तक पहुँच जाती है। बेजबरुवा का वैशिष्ट्य उनकी शैली में है, वे हँसना जानते थे और उनकी हँसी चाहे मिथ्या मूल्यों के प्रति व्यक्ति के आग्रह के कारण रोष-रंजित भी रही हो, पर वे अपने विचार प्रांजल प्रसादमय गद्य में उतारना जानते थे। व्यक्तियों की भूलों, त्रुटियों और असफलताओं के निरीक्षण में बेजबरुवा विमर्श से काम नहीं लेते थे, व्यक्ति-चरित्रों और विषयों का जो वैविध्य उनके निबन्धों में मिलता है वह अद्भुत है। वे तो चाहे जिसका अनुकरण करने की क्षमता रखते थे, पर उनकी नकल करने तक की क्षमता किसी और में न थी।

बेजबरुवा के व्यक्तिपरक निबन्धों से लगाकर साहित्य एवं धर्म-विषयक उनके गम्भीर अध्ययन तक की यात्रा बड़ी मनोहारिणी है। इन अध्ययनों में साहित्य एवं नैतिक धार्मिक दर्शन का उनका ज्ञान और पाण्डित्य अपने उत्कृष्ट रूप में जगमगा रहा है। इन अध्ययनों में उनके जो विचार उपलब्ध होते हैं उनके पूरक रूप में उन्होंने शास्त्रों से, और विशेषतया वैष्णव नीतिपरक साहित्य से महत्त्वपूर्ण उल्लेख संकलित किए हैं।

रेवरैण्ड तिसुल डेवाज ने अपने इस कथन में ठीक ही कहा है कि "विगत

तीन हजार वर्षों में भारतवर्ष में ऐसी किसी महान् आत्मा का उदय नहीं हुआ जिसने वेदान्त-शिक्षा का आह्वान स्वीकार न किया हो। यह शिक्षा विश्व के प्राचीनतम और सर्वाधिक स्थायी दर्शन की भावना से पूर्ण है।" स्पिनोजा का कथन है: "ईश्वर का परिचय प्राप्त करो और शान्ति लाभ करो।" ईश्वर ही अनन्त और अविनश्वर तत्त्व है और उसीके प्रति केन्द्रित प्रेम ही 'आत्मा को अपरिवर्तनीय एवं विशुद्ध आनन्द से भर सकता है।' ऐसा प्रतीत होता है कि बेजबरुवा ने यह तथ्य वैष्णव साहित्य के अपने गहन अध्ययन से पहचान लिया था। वैष्णव दर्शन, विशेषतया शंकरदेव (१४४६—१५६१) और माधवदेव (१२८६—१५९६) के मत का वैष्णव दर्शन, अत्यन्त विस्तृत रूप में वेदान्त से अनुप्राणित हुआ था। असमिया वैष्णव साहित्य के अपने अध्ययनों में और 'तत्त्वकथा' के अपने गहन दार्शनिक लेखन में बेजबरुवा ने इस तथ्य का मार्मिकता एवं विद्वत्ता से उद्घाटन किया है। अपनी कृति 'श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव' में वे जो कुछ छोड़ गए थे उसकी पूर्ति उन्होंने 'तत्त्वकथा' में कर दी है। बेजबरुवा के लिए धार्मिक बोध वंश-परम्परा का अंग था, जिस परिवेश में उनका लालन-पालन हुआ उसने उनमें इसके संस्कार सहज ही भर दिए थे। तथापि उनकी धार्मिक भावना में कोई कठमुल्लापन न था, उसमें उदारता को निश्चित स्थान था, क्योंकि बेजबरुवा पूर्णता और आध्यात्मिक प्रबोध के सहारे सृजन करते थे। यदि जोला की कला-विषयक यह परिभाषा सही है कि 'कला विश्व को अपने स्वभाव के माध्यम से देखने का नाम है' तो वह बेजबरुवा में भली प्रकार चरितार्थ होती है।

अंग्रेजी साहित्य का आगस्टन युग राजनीति और साहित्य के संयोग के लिए विख्यात है। बेजबरुवा के प्रसंग में मोटे तौर पर साहित्य का सामाजिक शब्दावली से संयोग हुआ था। उनका विक्षोभ और उनकी कड़वाहट सच्ची तो थी ही, वह दण्ड-विधानात्मक भी थी। यह संयोग हमारे लिए अत्यन्त परिचित घटना है। पर वे इस संयोग को चाहे जब उतार भी फेंकते थे। इसका प्रमाण उनके धार्मिक-दार्शनिक निबन्धों के गहन स्वर में देखा जा सकता है। इनमें वे नितान्त भिन्न प्रकार की शैली बरतते थे। बेजबरुवा के लिए भाषा एक 'कौशल' भी थी और 'कर्म' भी। वे दर्शन और धर्म को अभेदात्मक मानते थे। और कम-से-कम इस विषय में वे माध्ययुगीन मनसा के व्यक्ति थे। जो हो, तत्वकथा के धार्मिक-दार्शनिक विवेचन में उनका स्वर उदार, विशद और

सौम्य है।

बेजबरुवा के विविध प्रकार के लेखन से इतना तो कहा ही जा सकता है कि वे सरस्वती के वरद पुत्र थे और उनकी क्षमता दुधारी थी; वे साधारण जन के विचारों और आदर्शों को स्पष्ट और साहित्यिक मुहावरे में अभिव्यक्त कर सकते थे; और वे सूक्ष्म नैतिक-दार्शनिक तत्त्वों को पाण्डित्यपूर्ण मौलिकता से प्रकट कर सकते थे। वस्तुतः **बेजबरुवा** ने एक भाषा का नहीं, वरन् दो भिन्न और निजी भाषाओं का निर्माण किया था। उदाहरण के लिए, उनके वैयक्तिक निबन्धों की भाषा की तुलना में उनकी 'तत्त्वकथा' की भाषा भिन्न है। इसी प्रकार वह उनके समसामयिक लेखकों की भाषा से भी भिन्न है, यथा **एच० सी० बरुवा** (१८३५—१८५७) और उनके 'कानियाकीर्तन' की भाषा से। यदि काण्ट ने अपने विचार साहित्यिक दृष्टिकोण से एक अटपटी शैली में व्यक्त किये होते तो भी संसार उनके विचारों की उपेक्षा न करता। पर साहित्यिक कलाकारों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। साहित्यिक कलाकार की एक निश्चित और स्पष्ट शैली होनी चाहिए जैसी कि **बेजबरुवा** की थी। उनकी शैली का वैशिष्ट्य है उसकी बलिष्ठता, और दार्शनिक विषयों पर लिखते समय भी उसमें दुरूहता नहीं मिलती। प्रांजल और सरल रूप में प्रवाहित होती वह अपनी पूर्व-निश्चित परिणति तक पहुँचती है। अगर बैरो के शब्दों में कहें तो वह 'बेगवती, खरी भाषा है।'

पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के असम के सन्त कवि शंकरदेव और माधवदेव की जीवनी 'श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव' (१९१४) मुख्यतः उनके जीवन और कृतित्व से सम्बन्धित उस सामग्री पर आधारित है जो उनके अनुयायियों द्वारा रचित उनकी जीवनियों में उपलब्ध है। ये लेखक अधिकतर या तो इन सन्तों के समसामयिक थे या अनुवर्ती पीढ़ी के थे। 'गुरुचरित' के लेखक अपने पिता **डी० एन० बेजबरुवा** से बेजबरुवा ने इन सन्त कवियों के सम्बन्ध में बहुत-सी जानकारी प्राप्त की थी। उनके पिता वैष्णव जीवन, धर्म और दर्शन के महान् ज्ञाता थे। कतिपय पौराणिक आख्यानों और दन्तकथा-प्रसंगों के यत्र-तत्र उल्लेखों को छोड़कर 'श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव' उस काल का प्रामाणिक वृत्त है जिसमें वैष्णव जीवन और धर्म अपने उत्कर्ष को प्राप्त हुआ था। अपने विषय में पूरी तरह लीन होने पर भी **बेजबरुवा** ने उसकी वस्तु को अपने निजी आग्रह के हस्तक्षेप द्वारा टूटने अथवा अस्वाभाविक रूप लेने नहीं

दिया।

अध्यात्म और आचार विचार की दृष्टि से वैष्णव मत पुराणपंथी ब्राह्मण दर्शन का विरोधी आन्दोलन था। शंकरदेव, माधवदेव और उनके अनुयायियों को महन्तों, मठाधीशों और पूर्वी असम के राजन्य वर्ग का खुल्लमखुल्ला विरोध सहना पड़ा था। पश्चिमी असम के राजे अधिक प्रज्ञावान थे; उनके प्रेरणाप्रद संरक्षण में धर्म, साहित्य, ललित कला और संस्कृति का सर्वांगीण विकास हुआ। ग्रन्थ का 'महापुरुषीय सम्प्रदाय' (धर्म-मत) शीर्षक अन्तिम अध्याय वैष्णव धर्म-दर्शन का पाण्डित्यपूर्ण अध्ययन है जो 'कामरूप का इतिहास' के लेखक के० एल० बरुवा ने प्रस्तुत किया था। यह निबन्ध पहली बार बेजबरुवा द्वारा सम्पादित पत्र 'वह्नि' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था।

अरस्तू पर न्यायालय ने यह अभियोग लगाया था कि वे लोगों में बलिदान और पूजा की व्यर्थता का प्रचार करते थे। शंकरदेव को भी इसी प्रकार राजकोप का भाजन बनना पड़ा था। शंकरदेव और माधवदेव आदि सन्तों के हृदय में एक 'रचनात्मक संशय' समा गया था और उन्होंने उसके समाधान के लिए आत्म-निरीक्षण द्वारा अद्वैत ब्रह्म के प्रति आस्था का प्रचार किया था। उपनिषदों का कथन है: 'अपने मन में दैवी भावना की प्रतीति कर लेने पर सुख दुःख की भ्रान्ति विलीन हो जाती है।' राजा के कोप के कारण शंकरदेव दूरदर्शितापूर्वक पूर्वी असम त्यागकर पश्चिमी असम में जा बसे। क्या यह संक्रमण उनकी कायरता का प्रमाण माना जायगा? एथेन्स छोड़ते समय अरस्तू ने कहा था कि वे अपने नगर को दुबारा दर्शन की हानि करने का अवसर देना नहीं चाहते। शंकरदेव भी वैष्णव मत के धर्म और दर्शन का प्रचार करने के उद्देश्य से कूचविहार और पश्चिमी असम के अपेक्षया अधिक सुरक्षित क्षेत्र में जा बसे थे।

'श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव' वैष्णव मत एवं तत्सम्बन्धी दर्शन के तुलनात्मक सत्य की स्थापना का पाण्डित्यपूर्ण प्रयास है। उसकी अन्विति है एक नैतिक आदर्शवाद, जो कथ्य के विकास और प्रकाश के साथ-साथ विकसित और प्रकाशित होता चलता है। बेजबरुवा की धार्मिक दृष्टि में कोई कट्टरता न थी और उनका खयाल था कि असम समाज के हित के लिए जीवन, संस्कृति एवं धर्म का मूलाधार शंकरदेव और माधवदेव द्वारा प्रतिपादित वैष्णव मत को बनाना चाहिए। एक भिन्न सन्दर्भ में प्रयुक्त मैथ्यू आर्नाल्ड के शब्द उधार लेकर हम कह सकते हैं कि वैष्णव मत 'भावना के स्पर्श से युक्त नैतिकता' का नाम है।

जीवनी में अमूर्त्तन का कोई स्थान नहीं होता। व्यक्ति का जीवन या तो सविशेष और मानवीय होना चाहिए या, फिर कुछ नहीं। बेजबरुवा की आत्म-कथा 'मोर जीवन सौवरण' जीवनी की इस परिभाषा के ही अनुरूप है। वह उनकी जीवनी का ऐसा आलेख है जिसमें मानवीय पक्ष पर बल दिया गया है। अथच, जीवनी समाज का भी इतिहास होती है। एक व्यक्ति के जीवन का जीवंत आलेख होने के अतिरिक्त बेजबरुवा की आत्म-कथा में १९ वीं शताब्दी के सामाजिक जीवन का भी विशद वृत्त है। उसमें केवल न्यूनाधिक कलात्मक अन्विति ही नहीं है, उद्देश्य की अन्विति भी है। अपने समग्र रूप में, इतिहास अथवा जीवनी अतीत अथवा वर्तमान के बेतरतीब और बेमेल खण्डचित्रों की शृंखला-मात्र नहीं होती। निस्संदेह बेजबरुवा की आत्म-कथा भी ऐसी ही रचना है। 'श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव' के प्राक्कथन में बेजबरुवा ने जीवनी की कला के सम्बन्ध में जो अभिमत व्यक्त किया है वह आदर्श रूप में उन्होंने 'मोर जीवन सौवरण' नामक अपनी आत्म-कथा लिखते समय निरन्तर अपने सामने रखा है। उन्होंने लिखा है : 'यदि जीवनीकार अपने वर्णित विषय में तल्लीन नहीं हो पाता तो व्यक्ति-जीवन की पुनः सृष्टि करने के सारे प्रयास निष्फल हो जाते हैं।' संक्षेप में, सन्त कवि शंकरदेव और माधवदेव एक निश्चित आस्था द्वारा प्रेरित थे, यह तथ्य बेजबरुवा ने 'श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव' में ज्वलंत रूप में उद्भासित किया है। अपनी इस व्याख्या में उन्होंने उन दो औपनिषदीय भावों को बड़ी सूक्ष्मता से पिरो दिया है जो वैष्णव मत के मूलाधार हैं : (१) आत्म-दर्शन का भाव, क्योंकि ब्रह्मदर्शन अपने ही अन्तर में होता है; और (२) यह भाव कि ब्रह्म का दिव्य प्रकाश 'सृष्टि के अणु-अणु में' प्रतिबिम्बित है।

बेजबरुवा की आत्म-कथा 'मोर जीवन सौवरण' 'शिक्षात्मक रस' से आप्लावित है। उसमें लेखक ने उदार और घटनापूर्ण वातावरण में बीते अपने शैशव की विशद स्मृतियाँ प्रस्तुत की हैं। शैशव में अर्जित आदर्श ही व्यक्ति को परवर्त्ती जीवन में सही आचरण की प्रेरणा और सामर्थ्य देते हैं।

बेजबरुवा द्वारा सम्पादित 'वह्नि' के अंकों से प्रा० अतुल हाजरिका द्वारा संकलित 'तत्त्व-कथा' (१९६२) में वैष्णव दर्शन और नीति-सम्बन्धी अध्ययन हैं जो एक-दूसरे से स्वतन्त्र होने पर भी बेमेल नहीं हैं। इन निबन्धों की रचना बेजबरुवा ने मसीही आदर्शवादी व्यक्ति की-सी भावना से की है, एक ऐसे व्यक्ति की भावना से जो दिव्य तत्त्व में कल्याण और आध्यात्मिक सौन्दर्य के मूल

स्रोत एवं सिद्धान्त-सूत्र के दर्शन पाता है। इन निबन्धों में समाहित पाण्डित्य की गहराई और आध्यात्मिक सूझ-बूझ को देखते हुए हम कह सकते हैं कि ये अनुशीलन उस समय रचे गए होंगे, जब **बेजबरुवा** के बेचैन मन को 'शान्त वातावरण' और आध्यात्मिक-निर्वेद की प्रतीति हो गई थी। इन निबन्धों से यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि हमारे समसामयिक साहित्य में विचार-प्रधान गद्य का प्रवर्त्तन **बेजबरुवा** ने ही किया। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि **बेजबरुवा** मूलतः धर्म-प्राण व्यक्ति थे।

जीवन के संग्राम में ईश्वर पर आस्था एक अजेय शक्ति है। 'धर्म आरु ईश्वर तत्त्व' (तत्त्व-कथा) में **बेजबरुवा** ने गीता और उसके दर्शन से मिलते-जुलते धार्मिक मतों एवं आदर्शों की प्रेरणाप्रद व्याख्या की है। गीता का दर्शन मसीही बाइबिल या इस्लामी कुरान की तरह एकान्तवादी नहीं है। जब वह कहती है : 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' तब वह ईश्वर के प्रति सर्वान्तःकरण की निष्ठा से समर्पण का पाठ पढ़ाती है। बेजबरुवा की दृष्टि ही नहीं, उनके मूल्यांकन की शैली भी सूक्ष्म, प्रांजल एवं विचार, स्वर और भंगिमा की गहराई से युक्त है।

श्रीधर स्वामी की कृष्णनाम की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या का आधार लेकर (जिसका स्थूल अर्थ है 'महा आध्यात्मिक आनन्द का दाता') **बेजबरुवा** ने इस सूत्र के सहारे 'श्रीकृष्ण तत्त्व' में एक स्फूर्तिप्रद आध्यात्मिक वचनावली की सृष्टि की है। आध्यात्मिक अस्तित्व की चेतना दिव्य प्रेरणा की टेक है। 'वस्त्रहरण तत्त्व' में कृष्ण के दो स्वरूप हैं जिनका विवेचन **बेजबरुवा** के गंभीर पाण्डित्यपूर्ण प्रबोध का प्रमाण है। इनमें से एक स्वरूप है गीता के कृष्ण का कुशाग्रबुद्धि और मेधावी, और दूसरा स्वरूप है वृन्दावन में कृष्ण की लोकप्रिय लीलाओं और क्रीड़ाओं का। श्री रामकृष्ण परमहंस आदि विचारकों और द्रष्टाओं की भाँति **बेजबरुवा** का भी यही मत था कि कृष्ण के इन दो पक्षों को पृथक् करके नहीं देखना चाहिए।

'रासलीला-तत्त्व' एक गूढ़ विषय पर चिन्तन-प्रेरक प्रबन्ध है जो बहुधा लोक में बड़े स्थूल अर्थ में स्वीकार किया जाता रहा है। कृष्ण को सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान ईश्वर का, विष्णु का अवतार माना जाता है। वस्तुतः वे स्वयं ईश्वर हैं और रासलीला पर इसी दृष्टि से विचार करना उचित है। दार्शनिक भाषा में, 'वस्त्रहरण-तत्त्व' में विवेचित ईश्वर का द्वैत प्रतीकात्मक माध्यम से दिव्य के आकर्षण और प्रभाव की अतिशयता एवं गम्भीरता व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया गया है। **बेजबरुवा** इस भाव को एक सामान्य रूपक से व्यंजित

करते हैं : जिस प्रकार धान के छिलकों में अक्षत का वास है उसी प्रकार लोकप्रिय क्रीड़ाओं में प्रभु का दिव्य आलोक अवस्थित है।

मोटे तौर पर, दार्शनिक दृष्टिकोण से ईश्वर को दो भिन्न रूपों में ग्रहण किया जाता है : एक स्वीकारात्मक रूप है : रसो वै सः, और दूसरा निषेधात्मक रूप है: नेति, नेति। जनसाधारण के मानस में उसका पहला रूप ही बसा हुआ है; अपने 'रासलीला-तत्त्व' नामक निबन्ध में बेजबरुवा ने ईश्वर के इसी रूप का आख्यान और विश्लेषण किया है। लोक-प्रचलित लीला-रूप के तल में वह चरम आनन्द अवस्थित है जो एक प्रकार से हिन्दू विचार और आदर्शों का सर्वोच्च प्रकाश है। ईश्वर की प्रतीति अनुभव से ही की जा सकती है। वह व्यक्ति के अन्त:करण में बोला करता है। ईश्वर के अनेक रूप हैं, और फिर भी वह एक है। भौतिक बन्धनों से ऊपर उठने पर ही ईश्वर की निर्मल और विशद प्रतीति होती है।

अपने समस्त व्यक्तित्व को समर्पित और लवलीन करके ही भक्त जन ईश्वर की प्रतीति कर पाते हैं। आत्मोत्सर्ग, कुल के बन्धनों का त्याग एवं अन्य भौतिक संसर्गों का परित्याग करके ही वृन्दावन की गोपियाँ कृष्ण से अपनी एकात्मता प्राप्त कर पाई थीं। कृष्ण और गोपियों की सांसारिक लीलाएँ ऊपर से भले ही उच्छृंखल लगती हों, तथापि उनमें गूढ़ आध्यात्मिक दर्शन अन्तर्निहित है जो वैष्णव धर्मावलम्बियों द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

श्रृँगार रस में है जिनकी रति
इसे श्रवण कर वे हों निर्मल मति

—**शंकरदेव**

भगवान् के विभिन्न अवतार उसी एक दिव्य आत्मा के स्वरूप हैं, बेजबरुवा ने अपने निबन्ध 'वेदादि तत्त्व' में इस भाव का बड़ा ही प्रांजल विश्लेषण किया है। विभिन्न अवतारों और वेदों के रूप में भगवान् के प्रकाश की कल्पना का उदय आर्यों द्वारा भूमि की विजय से उत्पन्न सामाजिक परिवर्तनों से संभूत गहन सामाजिक चिन्तन का प्रतिफलन है। लेकिन जहाँ वेद अपने आधारभूत अर्थ में धार्मिक आचरण के नियम-संग्रह हैं वहाँ परवर्ती उपनिषद् स्थूल रूप में अध्यात्म का अमूर्त्तीकरण है। आध्यात्मिक दृष्टि से उपनिषदों में जीवन और सृष्टि के रहस्यों के अन्वेषण का और उन्हें सार्थकता प्रदान करने वाली दिव्य ज्योति की प्रकृति के अन्वेषण का प्रयास है। फलस्वरूप ईश्वर की एकता सिद्ध हो गई यद्यपि उसके

अवतार विभिन्न स्वरूप में हुए—वह सर्वज्ञ है, सर्वविद्यमान है और स्थूल एवं सूक्ष्म जगत् का रचयिता है। संक्षेप में, भगवान् परमात्मा है, जिसे टेनीसन ने 'उपरि आत्मा' कहा है। अपने 'वेदादि तत्त्व' निबन्ध में बेजबरुवा ने इसी विचार को प्रांजल रूप में विकसित किया है।

जितने भी धर्म ग्रंथ हैं, उनमें गीता ही एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें कतिपय दार्शनिक तत्त्वों का निखरा हुआ और गहनतम सार समाया हुआ है। कलियुग में, अर्थात् मानव-सभ्यता के समकालीन चरण में, नाना पार्थिव सम्मोहनों के कारण आध्यामिक उपलब्धि पृष्ठभूमि में पड़ गई है। जीवन के इस जंजाल से मुक्ति पाने के लिए असम में वैष्णव चिन्ता के जनक शंकरदेव ने एक पथ का संकेत किया है—जिसे वैष्णव शब्दावली में भक्ति-मार्ग कहते हैं। अपने निबन्ध गीता तत्त्व' में गीता और भक्ति के दार्शनिक विवेचन के अतिरिक्त बेजबरुवा ने तीन अन्य मार्गों के सार पर भी प्रकाश डाला है। ये मार्ग हैं: ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और योग मार्ग। कर्म मार्ग का अर्थ जीवन के पार्थिव व्यापारों में घिरे रहना नहीं है, अपितु उत्सर्ग भावना से प्रेरित होकर कर्त्तव्य-पालन करते रहना है। शंकरदेव की भाँति बेजबरुवा भी जीवन से निवृत्ति के दर्शन के विरोधी थे क्योंकि एक प्रकार से उसका अर्थ है जीवन-संग्राम से विमुख होना।

गीता में जिस धर्म का प्रतिपादन है उसकी मूल प्रेरणा है निष्काम-दर्शन। अन्यथा एक पशु में और एक मानव में और अन्तर ही क्या है? उनकी मौलिक आवश्यकताएँ तो समान हैं, काम और क्षुधा, भोजन और प्रजनन। कामना ही जीवन की प्रधान क्षुधा है। परन्तु जो लोग जीवन की कामनाओं को जीतकर एकाग्र निष्ठा से प्रभु की खोज करते हैं वे ही ईश्वर की सच्ची सन्तान हैं। आत्म-साक्षात्कार, आत्मानं विद्धिः, कठिन सिद्धि है पर उसके बिना आध्यात्मिक ज्ञान सम्भव नहीं। वेदान्त दर्शन के अनुसार, जन्म विस्मरण है। प्रभु की प्राप्ति का अर्थ है जन्म पर विजय पाना। भक्ति आत्म-प्रतीति के मार्ग को आलोकित करने वाली है। उसके बिना कोई भी धर्म प्रेरणा अथवा प्रभाव की दृष्टि से सार्वभौम नहीं कहला सकता। आत्मा के अंतरतम को हिला देने वाला तत्त्व है उत्सर्ग और वैराग्य। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में: 'प्रभु का दर्शन हृदय के ही द्वारा होता है बुद्धि के द्वारा नहीं बुद्धि तो हमारे मार्ग को स्वच्छ करने वाले परि-चारक की भाँति सेवक-मात्र है। भावना ही सच्ची साधक है जो विद्युत् गति से भी अधिक क्षिप्र होती है।' भगवान् सर्वोपरि है, राम या कृष्ण के रूप में उनके

पार्थिव अवतार उन्हें सीमा में नहीं बाँध पाते। बेजबरुवा के निबन्ध 'कीर्तन आरु घोष-तत्त्व' का मूल-भाव यही है।

'तत्त्व कथा' के निबन्ध कृष्णावतार के रूप में प्रकट प्रभु के प्रति श्रद्धा की पुष्टि करते हैं। इन निबन्धों को समझने के लिए उस मूलभूत मनोविज्ञान को समझना जरूरी है जिसकी प्रेरणा से बेजबरुवा ने इनकी रचना की है। 'पिक-विक' शैली के उनके कुछ निबन्धों से यह स्पष्ट है कि बेजबरुवा छद्म भक्तों के अहंकार, पाखण्ड और आडम्बर का मज़ाक उड़ाने से कभी न चूकते थे। ऐसे भक्तों का ज्ञान कोरा भ्रम-जाल होता था, वे अंध अतीत और स्फीत अहं के बन्दी होते थे। 'तत्त्व-कथा' के धार्मिक-दार्शनिक निबन्धों में बेजबरुवा ने ऐसे एकांगी धार्मिक व्यवहार का मुँहतोड़ जवाब दिया है। इन निबन्धों में लेखक ने अपने धार्मिक-दार्शनिक विचारों के निर्माणात्मक दृष्टिकोण की व्याख्या की है। इस प्रकार उनके वैयक्तिक निबन्धों में जो खाइयाँ रह गई थीं वे इन चिन्तन-परक निबन्ध-रत्नों से भर गई हैं।

जैसा कि बेजबरुवा के व्यक्तिपरक निबन्धों से प्रकट है, वे साधारणत: किसी भी विषय की चर्चा वैज्ञानिक भावहीन रूप में अथवा अनावश्यक घटाटोप के बिना नहीं कर पाते थे। उनकी अपेक्षाकृत प्रौढ कृति 'श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव' भी इस शिल्प-गत दोष से मुक्त नहीं है। दाँते ने गद्य की परि-भाषा 'शृंखलाहीन शब्द' के रूप में की थी —बेजबरुवा के व्यक्तिपरक निबन्ध इसकी सहज ही पुष्टि करते हैं। निरखना, जानना, आस्वाद करना, और विचारों एवं भावों को ज्यों-का-त्यों व्यक्त करने के लिए शब्द खोजना, चाहे वे किसी भी मानसिक स्थिति से सम्बद्ध हों—बेजबरुवा के जीवन की शर्त थी। यही बात उनके व्यक्तिपरक एवं नैतिक-धार्मिक निबन्धों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। एक ओर यदि उनके व्यक्तिपरक निबन्धों का आकर्षण युग-सापेक्ष है, और सच कहा जाय तो अब ये निबन्ध पुराने पड़ गए हैं, तो दूसरी ओर उनके नैतिक-धार्मिक निबन्ध समय की सीमा के बन्दी नहीं हैं और काल-पथ पर निरंतर गूँजते रहेंगे। औलिवर एल्टन के शब्दों में 'व्यक्ति की आन्तरिक वृत्तियाँ दूसरों में संचारित होती हैं या लुप्त हो जाती हैं इसीसे निश्चय होता है कि व्यक्ति की इयत्ता बनी रही है या समाप्त हो जाती है।' बेजबरुवा के व्यक्तिपरक निबन्धों की 'मानसिक वृत्तियाँ' संचरित नहीं हुईं और उनके किसी भी सम-कालीन लेखक ने उन्हें सम्यक् रूप में प्रतिबिम्बित नहीं किया। निकट वर्तमान

के चारु लेखन तक में बेजबरुवा का प्रभाव तनिक भी विद्यमान नहीं है।

ऐसा प्रतीत होता है कि बेजबरुवा की धारणा यह थी कि लेखक की शैली अपने पाठकों को प्रसन्न करने वाली होनी चाहिए, चाहे वह शैली कृत्रिम मुद्रा का ही रूप क्यों न धारण कर ले, जैसा कि उनके व्यक्तिपरक निबन्धों में हुआ है। 'काकोटोर टोपोला' में ढेंकि कवि की कल्पना बंकिमचन्द्र के 'कमलाकान्त' से ग्रहण की गई है। बेजबरुवा ने बस इतना ही किया है कि उसे मिथ्या कवियों के प्रति विद्रूप से आवृत कर दिया है। वे अपने समकालीन साहित्यिक प्रतिद्वन्द्वियों से घृणा करते थे या नहीं यह कहना तो कठिन है, परन्तु इतना अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि वे उनमें से कुछ के प्रति गर्वयुक्त उपेक्षा का भाव अवश्य रखते थे। तथापि यह कहना आवश्यक है कि बेजबरुवा के स्वभाव और मानस में अंध कोणों का नितान्त अभाव था। अत्यन्त सूक्ष्म रूप में मन्यु का भाव तो उनमें अवश्य था और एक उच्छृंखल प्रकार के व्यंग्य का भी, पर इसने जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण को कभी विषाक्त नहीं किया।

स्फीत शब्द-जाल और वाक्-चातुरी से सर्वथा उन्मुक्त, बेजबरुवा की शैली उनके मन का सच्चा प्रतिबिम्ब थी और जैसा कि हम उनके नैतिक-धार्मिक निबन्धों से देख सकते हैं, वह आवश्यकतानुसार जीवन के गहनतर पक्षों की बौद्धिक प्रतीति के लिए अत्यन्त उच्च स्तर तक पहुँचने में समर्थ थी। संक्षेप में, उनकी शैली उनके मन का सच्चा प्रतिबिम्ब तो थी ही, वह उनके मन का पारदर्शी प्रतिबिम्ब भी थी। बेजबरुवा सर्वदा सुधारक बने रहे और अन्त तक वे सोद्देश्य साहित्य-रचना में लगे रहे। 'तत्त्व-कथा' का गद्य संयत और सौम्य है, सूक्ष्म और अर्थवान्। साथ ही वह मृदुल और प्रसन्न भी है—वर्षा की फुहार के बाद की धूप की भाँति।

नाटककार के रूप में

'कहा जाता है कि कामदी में सामाजिक मानदण्ड के विवर्त्तनों को हास्यास्पद रूप में प्रतिबिम्बित किया जाता है' पर **बेजबरुवा** द्वारा लिखित स्थिति-विशेष के इन नाटकों में सामाजिक मानदण्ड और उनके विवर्त्तन के संयत, वस्तुपरक आकलन की लेखकीय क्षमता कहीं भी प्रकट नहीं होती। यह सही है कि बेन जानसन की भाँति इस नाटककार ने भी 'मानव-अपराधों से नहीं; मानव-त्रुटियों से' खेलने की चेष्टा की है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि **बेजबरुवा** की प्रतिभा मूलतः अगंभीर तत्त्व की ओर उन्मुख थी, वाचाल बालक की प्रगल्भता की भाँति। अपने प्रहसनों से **बेजबरुवा** ने मानव-चरित्र के दोषों की ओर संकेत अवश्य किया है पर सामाजिक चिन्ता से पुष्ट हुए बिना मात्र ऐसा संकेत एक रिक्ति की सृष्टि कर देता है।'[1]

शिल्पगत भेद होते हुए भी, बेजबरुवा के प्रहसन एक प्रकार से नाटकीय संवाद और स्थिति के रूप में उनके विनोदात्मक निबन्धों में व्यक्त मानस और भावना के ही पिष्टपेषण हैं। उदाहरण के लिए, 'नोमल' नामक नाटक का कथानक बिलकुल वही है जो 'बुढ़ि आइर साधु' में समाविष्ट '**नौमलिया पो**' नामक कहानी में वर्णित है। व्यक्तिपरक निबन्धों के **कृपावर बरुवा बेजबरुवा** के प्रहसनों में वैसी ही निरपेक्ष दृष्टि से जीवन जीते मिलते हैं, वैसी ही हास्य-शक्ति से चित्रित किए गए हैं।

असमिया साहित्य में कामदी अथवा प्रहसन का पथ **एच० सी० बरुवा** की युगान्तरकारी रचना 'कानियाकीर्तन' (१८६१) ने प्रशस्त किया था। उसकी तुलना में अथवा उनके विशिष्ट समसामयिक **पी० एन० गोहाँई-बरुवा** के प्रहसन 'गाँवबुड़ा' (१८९९), 'टेंटुन टामुलि' (१९०९) या 'भूत ने भ्रम' (१९२२) की तुलना में **बेजबरुवा** के प्रहसन 'लितिकाइ' (१८९०), '**नोमल**' (१९१२), 'चिकर-पति निकरपति' (१९१२) और 'पाचनि' (१९१३) घटिया कृति जान पड़ते हैं; ये नाटक सामाजिक उद्देश्य से शून्य हैं। **एच० सी० बरुवा** और **पी० एन० गोहाँई-**

---

१. असमीज़ लिटरेचर, १९६५

बरुवा के प्रहसनों में असमिया सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति हुई है, कम-से कम उसकी झलकियाँ उनमें अवश्य मिल जाती हैं, पर यही बात इतने ही आग्रह से बेजबरुवा के प्रहसनों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती।

उद्दीपित चरित्र-चित्रण और स्थिति के सघन आमोद द्वारा मंच-प्रभाव की सृष्टि करने में बेजबरुवा के प्रहसन अपने सीमित रूप में निस्संदेह सफल हैं, पर इन तत्वों को हम नाटक का प्राण नहीं कह सकते। उदाहरण के लिए 'लितिकाइ' के कुछ दृश्य इतने अनर्गल हैं कि अनर्गलता अपनी हद पर पहुँच गई है। चरित्रों, विरोधों, अस्पष्टताओं और कृत्रिम रूप से निर्मित स्थितियों की विसंगतियाँ किसी भी साहित्यिक कृति की प्राण-स्रोत नहीं बन सकतीं, नाटक की तो और भी नहीं। इन प्रहसनों के सामान्य स्तर को देखते हुए यह कहना अत्युक्ति न होगी कि वैष्णव साहित्य के शाश्वत स्रोतों में अवगाहन करने वाले बेजबरुवा का ध्यान संभवतः इनको लिखते समय राम सरस्वती के 'विदग्ध, उच्छल और उत्फुल्ल' प्रहसन 'भीमचरित' पर टिका हुआ था।

बेजबरुवा के प्रहसनों का आधारभूत तत्त्व था हास-परिहास की स्थितियों के निर्माण का आग्रह; उनमें हास्य की सृष्टि मुख्यतः संवादों के मोड़ों और घुमावों से, यत्र-तत्र ग्रामीण मुहावरों के समावेश से और शब्दों के विपर्यय से की गई है। चरित्र की विचित्रताओं को प्रकट करने और बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करने के लिए शब्दों को मोड़ने-घुमाने के विषय में बेजबरुवा की बराबरी का लेखक खोज पाना कठिन है। स्थिति अथवा चरित्र की विचित्रताओं को धार देने के लिए वे बहुधा जान-बूझकर पौराणिक संदर्भों से गलत उद्धरण प्रस्तुत कर देते थे जिससे बरबस हँसी आ जाती थी। यह कहना भी बहुत गलत न होगा कि इस प्रकार की युक्तियों के प्रयोग से कुछ हद तक लेखक की अहं भावना भी प्रकट होती है। उदाहरण के लिए 'नोमल' में वर्णसंकर साहित्यिक कथोपकथन के दृष्टान्तों के उल्लेख द्वारा सत्राधिकार के साहित्यिक रचना के प्रयासों को जो अतिरंजित रूप दिया गया है वह हर प्रकार से वितृष्णा उत्पन्न करने वाला है : **'गान्दर रकम शुनि मेदिनी माओ कपिसे'**।

स्थिति की सृष्टि करने के लिए सर्वस्वीकृत नाटकीय द्वन्द्व के स्थान पर बेजबरुवा षड्यंत्रों और प्रति-षड्यंत्रों, विस्फोटों और प्रति-विस्फोटों का उपयोग करते हैं। इन प्रहसनों में अनेक आयाम हैं, पर उन सबमें जो आयाम सर्वप्रमुख है वह है अतिरंजित चरित्र-चित्रण और स्थिति से उत्पन्न आयाम। इनके अतिरिक्त,

मूल्यों के अनुचित आग्रह और कठमुल्लेपन से उत्पन्न सामाजिक अनर्गलताओं के व्यंग्य-उल्लेख इन प्रहसनों में अधिकांशतः आनुषंगिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। तथापि परिस्थितियाँ कैसी भी क्यों न हों उनका संवाद अनिवार्य प्रतीत होता है। यह सही है कि बेजबरुवा की शैली कभी-कभी दुर्बोध हो जाती है, पर ऐसा दस में एक बार ही होता है।

बेजबरुवा के प्रहसन सच्चे अर्थ में कामदी की संज्ञा नहीं पा सकते, न हल्की न गंभीर, क्योंकि कामदी और प्रहसन में लक्ष्य एवं स्तर का भेद होता है। साधारण अर्थ में कामदी का लक्ष्य 'विचारपूर्ण हास्य' प्रस्तुत करना होता है। वह सर्वोच्च अर्थों में सामाजिक होती है जबकि अपनी प्रकृति के कारण प्रहसन ऐसा नहीं होता। उदाहरण के लिए **'लितिकाइ'** में कुछ मानसिक रूप से विकास-रुद्ध पात्र हैं, जो सब-के-सब सगे भाई हैं, और वे स्वयं ही अपनी मूढ़ता और विचित्रता से ऐसी स्थितियों को जन्म देते हैं जो हँसा-हँसाकर लोट-पोट कर देती हैं। नाटक का मूल अभिप्राय उनके इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहता है जिनमें नाटक का प्रमुख पात्र **देऊराम** भी सम्मिलित है। **देऊराम** ब्राह्मण है जिसके यहाँ सारे भाई नौकरी करते हैं। प्रहसन के प्रसंग में अतिरंजना अनिवार्य होती है। **'लितिकाइ'** की परिणति प्रतिशोध में होती है; सातों भाइयों में प्रमुख तिताइ अंत में उग्र ब्राह्मण स्वामी की साली से विवाह करता है। ब्राह्मण-पत्नी चण्डी को छोड़कर और सभी पात्रों का चित्रण कत्थई रंग से हुआ है।

यद्यपि **'पाचनि'** की रचना दो दशाब्द बाद हुई पर वह भी **'लितिकाइ'** की भाँति स्थिति पर आधारित प्रहसन है। चरित्र-अध्ययन का वैषम्य दृष्टिकोण के भेद द्वारा प्रस्तुत किया गया है : **पाचनि** की अतिथि-सत्कार-भावना जो उसके मन में बद्धमूल हो गई है और उसकी पत्नी का उसकी इस भावना के प्रति नितांत रूखा उपेक्षा भाव। जिन युक्तियों और तरकीबों से उसकी पत्नी उसके अनजाने में ही अतिथियों को टाल देती है वे स्थिति की नाटकीयता को तीव्र कर देती हैं। पत्नी को वैष्णव धर्म के सिद्धांतों की गहरी समझ है, विशेष रूप से इस सिद्धांत की कि प्रभु की दृष्टि में सारे प्राणी समान हैं। यह प्रतीति ही इस भौंडे और भद्दे प्रहसन को उच्च स्तर पर ले जाती है।

सरसरी दृष्टि से **'चिकरपति निकरपति'** में किसी आधारभूत मानवीय दुर्बलता का परिहास नहीं है वह तो **चिकरपति** और **निकरपति** नामक दो पक्के चोरों की चतुराई और धूर्त्तता पर रोचक प्रकाश डालता है, जो एक-दूसरे

को मात देने की चेष्टा करते हैं। **चिकरपति** ज्यादा चालाक है और वह **निकर-पति** को हरा देता है। सभी प्रहसनों की भाँति इसका अन्त भी सुखद है। तथापि धूर्त्तता की स्थिति के साथ-साथ नाटक के दूसरे दृश्य में मानव-चरित्र की दुर्बल-ताओं पर भी प्रकाश पड़ता है। बूढ़ा वकील गंगाराम आयु, वाचालता और छद्म ज्ञान की अवांछित मुद्रा का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर **सुतुली गोहाँइदेऊ** उस संभ्रांत व्यक्ति का प्रतिनिधि है जो अपने-आपको हमेशा बीमार मानकर चलता है, क्योंकि उन दिनों निरन्तर रोग की यह मुद्रा एक प्रकार के सामाजिक वैशिष्ट्य का एकाधिकार मानी जाती थी।

ड्राइडेन ने कहा है : 'प्रहसन विरूप और विचित्र के माध्यम से हमारा मनो-रंजन करता है।' यदि 'विरूप' के स्थान पर 'असंभाव्य' शब्द का व्यवहार किया जाय तो हमें **बेजबरुवा** के प्रहसनों का थोड़ा-बहुत परिचय मिल जाता है। वस्तुतः उनके प्रहसनों में व्यंग्य बहुत कम हैं, और अमर्ष तो है ही नहीं। सच कहा जाय तो **बेजबरुवा** के ये प्रहसन उनके विनोदपूर्ण रेखाचित्रों की ही भाँति सरल, सपाट शैली, अट्टहास के पुट, चटपटे परिहास, अकल्पनीय मूर्खताओं और हास्य की अक्षय उर्वरता के लिए उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार के नाटकों में कथा-तत्त्व सामान्यतया विरल और स्वादहीन होता है, तथापि उनमें निहित अदम्य शब्द-क्रीड़ा और स्थिति-नियोजन की क्षमता पाठक की अर्द्ध-विश्वासी और अर्द्ध-संशयी कल्पना में परितृप्ति की एक ऐसी भावना की सृष्टि कर देती है जिसके कारण प्रहसन कहे जाने वाले ये नाटक लोकप्रिय हैं।

गार्डन हेक के शब्दों में हम कह सकते हैं कि **बेजबरुवा** के प्रहसनों के पात्रों में 'उनके अपने रंग में रँगा व्यक्तित्व' है। नाटककार अपनी निजी शैली और दृष्टि का विकास करके अपने वर्णनों को वास्तव जीवन का प्रतिबिम्ब बनाता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए **बेजबरुवा** ने अपने संवादों में सहज और अनायास रूप में शब्दों की पुनरावृत्ति का प्रयास किया है। उद्देश्य यह था कि बातचीत उसी मंथर और सहज गति से हो जैसी वास्तव जीवन में होती है। वस्तुतः, चपलता, विशिष्टता, मृदुल व्यंग्य में हास्य का अन्तर्गुम्फन आदि सभी गुण **बेजबरुवा** की रचनाओं में प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं, उसके प्रहसनों में भी। तथाकथित संभ्रांत दृष्टि में ये प्रहसन भले ही भौंडे और मोंथरे प्रतीत हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि वे व्यर्थ के गुबार और अनावश्यक अतिरेक से मुक्त हैं।

यह सच है कि **बेजबरुवा** के प्रहसनों के अधिकांश पात्र हू-ब-हू प्रतिरूप न

होकर यथार्थ दृष्टि के अतिरंजित रूपान्तर हैं। इस सम्बन्ध में यह कथन अत्युक्ति न होगा कि बेजबरुवा की अशान्त मनोदशा उत्कर्ष तक के लिए घातक थी; पर इतना होते हुए भी, यह संकेत करना जरूरी है कि उनके प्रायः सभी पात्र, वे कितने ही अतिरंजित क्यों न हों, अपने-अपने ढंग से संगतिपूर्ण हैं। बेजबरुवा की संवेदनाएँ तीक्ष्ण और तीव्र थीं जो अधिकतर उनके विचित्र अभियान की प्रेरणा बन जाता थीं, पर साथ ही उनका मन इतना संयत भी था कि जहाँ भी नियमन आवश्यक हो वहाँ नियंत्रण करने में समर्थ था। उनका यह गुण विशेष रूप से उनके गम्भीर नाटकों में प्रकट होता है जो मुख्यतः ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित हैं।

बेजबरुवा के गम्भीर नाटक, 'बेलिमार', 'जयमति कुँवरि' और 'चक्रध्वज-सिंह' (सबकी रचना १९१५ में हुई) नाटकीय सामग्री और नाटकीय क्षणों से ओत-प्रोत हैं। यही कारण है कि इनमें से किसी भी ऐतिहासिक नाटक में जीवन्तता का अभाव नहीं है। सच तो यह है कि नाट्य-रचना ने बेजबरुवा की प्रतिभा को अनुशासित किया और उन्हें उनकी शैली का अभिज्ञान दिया। ये ऐतिहासिक नाटक एक विशेष उद्देश्य की—देश-भक्ति-ज्ञान के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। 'असमीज़ लिटरेचर' से उद्धरण देते हुए हम कह सकते हैं कि 'ब्रिटिश शासन-काल में हमारे साहित्य को जिस रोमांटिक आदर्श ने प्रभावित किया, इतिहास के प्रति रुचि उसका प्रेरक पहलू है। दासता की राजनीतिक परि-स्थितियों में वह और भी तीव्र हो गया था। तभी हमारे ऐतिहासिक नाटक प्रकट हुए। पी० एन० गोहाँई-बरुवा का दुःखान्त नाटक 'जयमति' (१९००) हमारी भाषा का पहला ऐतिहासिक नाटक है। साकार साहित्यिक रूप में ऐतिहासिक अतीत के पुनरुज्जीवन ने वर्तमान जीवन में नए प्राण डालने में मदद की। जिस प्रकार बेन जानसन ने 'सेजानस' में रोम के इतिहास का आश्रय लिया था, उसी प्रकार प्रहसन-लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकने के बाद बेजबरुवा ने अपने गम्भीर नाटकों के लिए अहोम अभिलेखों का आश्रय लिया। वैषम्य द्वारा चरित्र-चित्रण एवं विनोदपूर्ण अन्तरालों की पद्धति में इन नाटकों में शेक्सपियर का यथेष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

'बेलिमार' की रचना असम पर बर्मा के आक्रमण की पृष्ठभूमि में हुई है। एक के बाद एक तीन बर्मी आक्रमणों ने भूमि को 'बंजर अस्थि-पंजर' बना डाला था। 'रक्तपात और अशान्ति' की इसी पृष्ठभूमि पर असम की स्वाधीनता का

अपहरण प्रस्थापित किया गया है। इस प्रस्थापन में विगत की शक्तियों के अभिज्ञान की गहरी अन्तर्दृष्टि निहित है। नाटक के पहले तीन अंकों में देश की स्वतन्त्रता के अन्त की विभीषिका के लिए दायी ऐतिहासिक शक्तियों का अंकन किया गया है। बड़े कौशल और प्रबोध द्वारा इस दुर्दशा के लिए उत्तरदायी चार प्रमुख ऐतिहासिक पात्रों की पारस्परिक कलह को उजागर किया गया है; ये पात्र हैं : चन्द्रकान्त, पूर्णानन्द, बदनचंद्र और सतराम। हीनवंशीय सतराम को राजा चंद्रकान्त का कृपापूर्ण आश्रय प्राप्त है; ऐसी स्थिति में स्वभावतः ही उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ आसमान को छूने लगती हैं। इस प्रकार वह अपने युग के सर्वोत्तम राजनीतिज्ञ पूर्णानन्द से टकरा जाता है। होते-होते सतराम के चारों ओर षड्यंत्र और छलना का एक जाल बिछ जाता है; अन्त में उसे राज्य से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

इसके अतिरिक्त, नाटक में विलासी पात्र चंद्रकान्त के श्याम पक्ष का चित्रण चटख रंगों में किया गया है, कत्थई में नहीं। पूर्णानन्द और बदनचन्द्र का द्वन्द्व भी अत्यन्त कौशल से चित्रित किया गया है। इस घटना का कई दृष्टियों से बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है। अंतिम अंक में असम के अहोम शासन पर अंतिम परदा पड़ जाता है : साथ ही वह कई ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करता है, यथा : (१) बर्मी आक्रमण, जिसने देश को यंत्रणा के गर्त्त में डाल दिया; (२) राजा चन्द्रकान्त का कामरूप को पलायन; और (३) ब्रिटिशों का आगमन।

इतिहास की शक्तियों का निरूपण करने में नाटककार ने असाधारण तथ्य-निष्ठा से काम लिया है। इसके आधार पर यह मानना भूल होगी कि बेजबरुवा में पात्रों की सृष्टि करने अथवा स्थिति को चरमोत्कर्ष तक ले जाने की मौलिक क्षमता का अभाव था। अनैतिहासिक गौण पात्रों की सृष्टि करने में नाटककार ने उल्लेखनीय कौशल और परिकल्पना का परिचय दिया है। साथ ही, नाटक के कुछ दृश्य नाट्य-तत्त्वों की अपेक्षा कथा-परक दृष्टिकोण से अधिक विश्लेषणात्मक व्याख्यात्मक हैं। इतिहास की शक्तियाँ जिस तनाव को जन्म देती हैं उसके वातावरण में हास्य-परक अन्तराल नाटक में वैषम्य के माध्यम से नाटकीय तनाव को ही तीव्र नहीं करते, इतिहास की सूखी हड्डियों को अधिक सप्राण और संभाव्य भी बनाते हैं। धनसिरी, बक्तियाल फुकन, माजुमेलिया बरुवा आदि से सम्बन्धित दृश्य इस उक्ति को प्रमाणित करते हैं।

'बेलिमार' एक पूरे जन की त्रासदी है। चन्द्रकान्त, बदनचन्द्र और पूर्णानन्द

को ग्रस्त करने वाली त्रासदी उस गहनतर त्रासदी का ही एक अंश है जो एक स्वाधीन जन के विशिष्ट व्यक्तित्व का नामोनिशान मिटा देती है। एक समूचे राष्ट्र की त्रासदी को उजागर करने के उद्देश्य से नाटककार ने इतिहास की गति को एक विशिष्ट त्रासद रूप में ढालने के लिए दायी पात्रों की अपेक्षा इतिहास के आधारभूत तथ्यों पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित किया है। तथापि यह कहना ही होगा कि पात्रों का भी समुचित विकास किया गया है।

'**बेलिमार**' में इतिहास एक सपाटे में प्रस्तुत किया गया है । **बेजबरुवा** के अन्य दो ऐतिहासिक नाटकों की भाँति यह भी नाटक की शेक्सपियरीय धारणा पर निर्मित किया गया है। हास्यात्मक अन्तरालों के अतिरिक्त **भूमुक बरुवा** नामक रोचक पात्र भी शेक्सपियर के विदूषक (मूढ़) की याद दिलाता है, क्योंकि उसमें अन्तर्निहित बुद्धिमत्ता और सहज चपलता का आकर्षक संयोग है। उसकी उक्तियों में सर्वदा आलोचना का पुट मिलता है। **राजमाउ** और **पिजौ** आदि नारी-चरित्रों के चित्रण में महत्त्वपूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया गया है। राजनीतिक घटनाओं के विषम प्रवाहों और अपने पिता **बदनचंद्र** की बर्मी आक्रमणकारियों के साथ साठगाँठ से विचलित हो जाने के कारण **पिजौ** अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठती है और शेक्सपियर की ओफीलिया की ही भाँति दुःखद मृत्यु को प्राप्त होती है।

शिल्प की दृष्टि से 'बेलिमार' निर्दोष नहीं है। नाटक के प्रथम तीन अंकों की गति मंथर है, जबकि चरमोत्कर्ष और परिणति को जन्म देने वाले अन्तिम दो अंक ऐसे नहीं हैं। यह तथ्य नाटक के शिल्पगत विकास को रुद्ध करता है और उसे वांछित अन्विति से वंचित कर देता है।

मंच-शिल्प की दृष्टि से प्रभाव की एकाग्रता के लिए उल्लेखनीय नाटक 'जयमति कुँवरि' यथेष्ट सफल है। नाटक सिद्धान्तों और व्यक्तित्वों की टकराहट का प्रतिनिधित्व करता है, उसकी परिणति एक स्थिति के परिष्कार में होती है जिसमें सारे पात्र अनिवार्य रूप से जड़ित हो जाते हैं। यद्यपि नाटक में एक महत्त्वपूर्ण पहलू से इतिहास का एक विवर्तन मिलता है, तथापि वह मोटे तौर पर ऐतिहासिक सत्य भी है और उसमें संवेग की समृद्धि भी है। इतिहास के अनुसार **लोरारजा** को दिग्भ्रष्ट करने वाला व्यक्ति **लालुक बड़फुकन** था, अतन **बुड़ागोहाँई** नहीं; जैसा कि **बेजबरुवा** ने चित्रित किया है। अगर यह भूल इतिहास के ज्ञान की कमी के कारण नहीं; वरन् इस उद्देश्य से की गई है कि

नाटककार अलन बुड़ागोहाँई, जैसे प्रमुख पात्र को सम्बद्ध करके इतिहास के एक त्रासद मोड़ को तीव्रतर आयाम देने के लिए इतिहास की मनमानी रचना कर रहे थे तो यह भूल समझ में आ सकती है।

बेजबरुवा की ऐतिहासिक नाटक-सम्बन्धी धारणा यह प्रतीत होती है कि उसमें इतिहास नग्न और अनलंकृत नहीं होता। एलाडाइस निकल ने कहा है कि 'द्वन्द्व नाटक की आत्मा है'। प्रस्तुत नाटक का द्वन्द्व परिष्कृत है, यद्यपि वह कहीं-कहीं रूक्ष है फिर भी उसमें संवेगात्मक प्रभाव का अभाव नहीं है। इस नाटक में बेजबरुवा ने अपने कुछ सर्वोत्तम चरित्र अंकित किए हैं, कुछ गौण पात्र हैं जो नाटककार का ध्यान आकर्षित करने में सफल हो गए हैं। प्रकट रूप में तन-मन से असंस्कृत पात्र पृथु चंगमई का हृदय 'मानवीय करुणा से ओत-प्रोत' है। यों वह निरा घरेलू नौकर है। पर निर्णयात्मक घड़ी में वह अनोखे साहस का परिचय देता है और अपनी निजी क्षेम-कुशल की परवाह न करके अपने स्वामी के परिवार के प्रति अपनी भक्ति पर अटल रहता है। त्रासदी की प्रमुख नारी-पात्र जयमति का चित्रण संयत रंगों से किया गया है; उसका प्रतिपक्ष भी समुचित रूप में चित्रित हुआ है जैसे शेक्सपियर के कोरियोलेनस का प्रतिपक्ष एन्फिडियस में। राज माउ, तरबारि (दासी), सेंउति, डालिमी आदि अन्य नारी-पात्र संवेगात्मक रूप में जीवन के सच्चे प्रतिबिम्ब हैं। नगा कन्या डालिमी के रूप में बेजबरुवा ने पर्वतों की प्राकृतिक सुषमा के अबोध प्राचुर्य में खिलखिलाते तरुण जीवन का चित्र अंकित किया है। डालिमी रोमाण्टिक परिवेश में एक चरित्र का वस्तुमुखी आकलन है। बेजबरुवा की इस सृष्टि की तुलना में पी० एन० गोहाँई-बरुवा के नाटक जयमति (१६००) की नगा कन्या जिनु केवल काव्य-दृष्टि से ही वन्ध्या नहीं है, वरन् वह आदर्श से वास्तविक स्खलन का भी प्रमाण है; यद्यपि बेजबरुवा का 'जयमति कुँवरि' (१६१३) उसीके आधार पर निर्मित प्रतीत होता है। तराई का पलातक युवराज गदापाणि इस वन्य सौन्दर्य के आस्वादन में डालिमी का प्रकृत सहचर बन जाता है। संक्षेप में, यद्यपि बेजबरुवा अपने धार्मिक-नैतिक निबन्धों में अध्यात्म का अनुशीलन करते हैं, तथापि वे अपने पात्रों को आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं देखते, वे भूमि से जुड़े हैं, पार्थिव हैं। केवल डालिमी ही इस नियम का अपवाद है।

नाटक के दृश्य मैदानों और पर्वतों में तेज़ी से अदलते-बदलते निरन्तर एक-दूसरे से कटते-जुड़ते चलते हैं। मैदानों में कड़वा यथार्थ है, संघर्ष और षड्यंत्र—

उदाहरण के लिए **लोरा रजा** का नैश संकट। पर्वतों में रोमान्स है जो जीवन के रूखे तथ्यों को काव्यात्मकता से रँग देता है। **डालिमी बेजबरुवा** की अमर सृष्टि है, अपनी अल्हड़ता में लगभग वर्ड्सवर्थ की-सी रचना। नाटककार ने उसके चरित्र और परिवेश का चित्रण ऐसे गद्य में किया है जो प्रांजल और रंगीन है और जो अपने वातावरण के सर्वथा उपयुक्त है। रोमान्स और भावुकता की दृष्टि से नितान्त सत्य पात्र **डालिमी** पर्वतों में लुप्त गीत की भाँति है। 'जयमति कुँवरि' वस्तुतः एक राजनीतिक गीतकथा है।

'चक्रध्वजसिंह' के सम्बन्ध में इतना तो कम-से-कम कहा ही जा सकता है कि वह ऊर्जा से भरपूर है। यद्यपि उसका प्रांरभ बहुत ही साधारण ढंग से होता है पर कथा में अन्तर्निहित द्वन्द्व और आवेश अन्ततः प्रबल रूप धारण कर लेते हैं और हमें बाँधने में समर्थ होते हैं। नाटक की प्रस्तावना में **बेजबरुवा** यह स्वीकार करते हैं कि इसकी रचना में उनका मुख्य उद्देश्य प्राचीन इतिहास की सम्पदा की ओर ध्यान आकर्षित करना है। औलिवर ऐल्टन का कथन है: 'विगत के बोध से वर्तमान को शिक्षा देने के लिए प्रायः इतिहास का आह्वान किया जाता है।' पर **बेजबरुवा** इस प्रक्रिया को उलटते हुए दिखाई देते हैं। वे विगत को वर्तमान के आलोक में देखने का प्रयत्न करते मिलते हैं। इस विपर्यस्त अन्तः संबंध ने सामाजिक अन्तःकरण को संगति और यथार्थ के एक अभिनव ढाँचे में ढाल दिया है।

बेजबरुवा ने स्वयं बताया है कि **प्रियराम** और **गजपुरिया** के चरित्र शेक्सपियर के प्रसिद्ध पात्र प्रिन्स हॉल और फालसटाफ के ढाँचे में ढाले गए हैं। प्रियराम प्रिन्स हॉल का प्रतिरूप है, **गजपुरिया** फाल्स्टाफ का, और **गजपुरियानी** मोटे तौर पर मिसेज़ क्विक्ली का। गजपुरिया के रूप में नाटककार ने एक ऐसे अविचारी के स्फीत चरित्र की प्रस्तुति की है जो नाटक में इधर से उधर तक अपवचन कहता मिलता है। निकट से देखें तो गजपुरिया केवल बाह्य तत्त्वों में ही फाल्स्टाफ का प्रतिरूप है; वह पटु है और छद्मवीर: जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण अपराधात्मक है। वस्तुतः वह फाल्स्टाफ की भाँति 'संवेदनापूर्ण चरित्र' नहीं है। इतना अवश्य कहना होगा कि गौण पात्रों के चित्रण में **बेजबरुवा** ने सर्वदा विवरण की मौलिकता से काम लिया है, उनकी योजना में कोई बोदापन नहीं है। भोंड़ी सादगी में से सूक्ष्मताओं को उजागर करने में नाटककार दक्ष है। यह सही है कि उन्होंने गजपुरिया-जैसे हास्य-पात्रों को और

भी हास्यास्पद बना दिया है तथापि कुल मिलाकर यही कहना होगा कि वे मानव हैं, यंत्र नहीं।

नाटक में सदिया खोआगोहाँई और सेनेही के बीच उद्घाटित प्रेम गौण प्रसंग-मात्र है; वह अपने प्रधान ऐतिहासिक कथानक से उसी तरह जुड़ा रहता है जैसे चंद्र-मण्डल में चन्द्रमा के उत्तरी सिरे पर टँका हुआ तारा। नाटक के चरित्रों में अन्तर्द्वन्द्व नहीं के बराबर है; नियति को चरित्र मानने वाले सिद्धान्त के अनुसार वे ऐसी परिस्थितियों के शिकार हैं जो उनके वश के बाहर हैं। यद्यपि नाटक का नाम चक्रध्वजसिंह के नाम पर रखा गया है, तथापि शीर्षस्थ चरित्र की स्पष्ट रूपरेखाएँ विकसित नहीं हो पाई हैं; वह मोमबत्ती के प्रकाश की तरह हैं जिसके इर्द-गिर्द इतिहास का समूचा कढ़ाव भट्टी की तरह उबलता रहता है। लगता है कि नाटककार ने अपना सारा यत्न और ध्यान गजपुरिया-जैसे गौण पात्रों पर उँडेल दिया है जिसके कारण चक्रध्वज पीछे पड़ गया है। दूसरी ओर लाचित का चरित्र पृष्ठभूमि का प्रकाश नहीं है, वह निरन्तर पूरी ज्योति से जगमगाता रहता है।

शिल्प की दृष्टि से 'चक्रध्वजसिंह' में कई चुभने वाले दोष हैं। ये दोष कथानक के संयोजन और दृश्यों के क्रम में दिखाई पड़ते हैं। विविध दृश्य नाटक की परिणति को बहुत दूर तक पुष्ट करते नज़र नहीं आते।

बेजबरुवा ने 'ऐतिहासिक नाटकों' की इस श्रृंखला का प्रणयन एक विशिष्ट उद्देश्य से किया था। वह उद्देश्य था सर्वोच्च प्रकार की देशभक्ति। टेनिसन के 'क्वीन मेरी' की भाँति बेजबरुवा के इन ऐतिहासिक नाटकों में शेक्सपियर की प्रेरणा एकदम स्पष्ट है। जो हो, इन नाटकों के चित्रगुण का श्रेष्ठांश नाटककार का अपना है। यह अवश्य कहना होगा कि 'जयमति कुँवरि' में प्रचुर काव्यात्मक दीप्ति है और यह दीप्ति ही उसे पी० एन० गोहाँई-बरुवा के समकक्षी नाटक से पृथक् करती है।

साहित्यिक मुहावरों में इतिहास की पुनः सृष्टि, विशेषतः नाटकों के रूप में, बड़ा कठिन काम है। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'मानव के अतीत का अध्ययन भी एक कला है।' इसकी सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि लेखक के पास कुछ असाधारण मानसिक क्षमताएँ हों। 'असमीज लिटरेचर' से उद्धरण देकर कहें : 'अतीत की सर्जनात्मक पुनः सृष्टि तभी संभव है जब लेखक के पास यथार्थ का द्वन्द्वात्मक बोध हो और उसमें ऐतिहासिक शक्तियों के उत्थान-पतन से तादात्म्य

करने की क्षमता हो। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 'इतिहास शिलीभूत क्षणों का निर्जीव लेखन नहीं है।' बेजबरुवा के ऐतिहासिक नाटकों में इस तथ्य की केवल आंशिक प्रतीति के ही प्रमाण मिलते हैं और इसीलिए उनका तादात्म्य भी ऊबड़-खाबड़ और आंशिक ही है।'

बेजबरुवा दो प्रकार के नाटकों के प्रणेता हैं: प्रहसन और ऐतिहासिक नाटक। ब्रिटिश राज्य की परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों ने परम्परागत मूल्यों को अनजाने ही चुनौती दी थी; इसीके साथ-साथ इस संदर्भ में तर्क का एक नया मनोविज्ञान भी प्रकट होने लग गया था। परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियों ने हमारे सामाजिक ताने-बाने में जो छिद्र उत्पन्न कर दिए थे उनको उजागर करने में इस तत्त्व से बड़ी सहायता मिली; इस मीमांसात्मक जलवायु में बेन जानसन की-सी कामदी लोकप्रियता प्राप्त करने लगी। इन नाटकों ने, विशेष रूप से 'लितिकाइ' के ढंग के नाटकों ने तर्क-प्रधान सामाजिक चिन्तन का क्षरण करने वाली समस्याओं के प्रति लोगों के अन्त:करण को सचेत किया हो या न किया हो, कम-से-कम वे एक प्रकार की 'अपराधात्मक तर्क-प्रणाली' के माध्यम से श्रोताओं को अपनी मूर्खताओं के अभिज्ञान द्वारा अपने ऊपर हँसने को प्रेरित करने में समर्थ हुए।

यह ध्यान देने की बात है कि यद्यपि साधारणतः ऐतिहासिक नाटक बृहत्तर अर्थों में देशभक्ति की व्याख्या करने वाले साधन-रूप माने जाते हैं, तथापि बेजबरुवा-जैसे नाटककारों का प्रधान अभिप्राय देशभक्ति की पुनर्व्याख्या से कहीं अधिक बड़ा था। आधुनिक अर्थ में नाट्य-परंपरा के निर्माण का और परिवर्तित परिस्थितियों में रंगमंच-आन्दोलन के प्रवर्त्तन का श्रेय इन्हीं नाटककारों को प्राप्त है। इस संदर्भ में बेजबरुवा के 'बेलिमार' जयमति कुँवरि' और 'चक्रध्वजसिंह'-जैसे गंभीर नाटकों का यथेष्ट योगदान रहा है; पी० एन० गोहाँई-बरुवा के नाटकों के साथ-साथ वे भी हमारे पथदर्शक रहे हैं।

कथाकार के रूप में

यह सच है कि **बेजबरुवा** के हाथों निश्चयात्मक अर्थ में आधुनिक कहानी क्या है इसका परिप्रेक्ष्य क्रमशः स्पष्टता से निरूपित होता चला गया; वस्तुतः वे हमारी आधुनिक कहानी के जनक हैं। जो हो, यह भी सच है कि उनकी प्रतिभा का जैसा तालमेल लोककथा से था वैसा अन्य किसी प्रकार से न था। सच पूछा जाय तो **बेजबरुवा** के प्रारम्भिक प्रयासों में अपनी लोककथाओं की पुनः सृष्टि करने का और इतर स्रोतों से, विशेषतः रूसी और बंगाली भाषाओं से उसी प्रकार की रचनाओं का आदान करने का प्रयत्न था। उदाहरण के लिए, अगर मूल के **माजन्टालि सरकार** नामक बिलाव के स्थान पर एक लोमड़े को रख देने के गौण परिवर्तन को छोड़ दिया जाय तो 'बुडि आइर साध' का **बुधिऔक स्याल** उपेन्द्रकिशोर रायचौधुरी की बँगला कृति '**टुनटुनिर बई**' में उपलब्ध मूल का ही प्रतिरूप है। शुरू-शुरू में **बेजबरुवा** ने बँगला में लिखने का प्रयत्न किया था; उसमें असफल होने पर उन्होंने असमिया में लिखना आरम्भ किया, सो भी बड़े जोश-खरोश से; जहाँ तक असमिया साहित्य का सवाल है उसके इतिहास में इससे बड़ी शुभ 'असफलता' और कोई नहीं हुई।

बच्चों के लिए लिखी गई अपनी लोककथाओं में **बेजबरुवा** ने बाल-कौतूहल के मनोरम लोक को बड़ी कुशलता से उद्घाटित किया है, सो भी बाल-मन में पैठ जाने वाली अपनी मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि के माध्यम से। इन कथाओं के वर्णन में अपने नातियों को कहानी सुनाने वाले बाबा के वर्णन की-सी सहजता और चारुता है। इनमें हमें वह गुण भी मिलता है जिसे रवीन्द्रनाथ ने 'आनन्दप्रद विसंगतियाँ' कहा है। **बेजबरुवा** द्वारा रचित लोककथाओं के संग्रह हैं 'साधु कथार कूकि'(१९१०), 'बुडि आइर साधु'(१९१२)और '**ककादेता आरु नातिलोरा**' (१९१२)।

'साधुकथार कूकि' प्रधानतया बालोपयोगी नहीं है। उसमें विभिन्न प्रकार के हास्य-तत्त्वों की भरमार है। उसमें वैसी ही विविधता और प्रचुरता है जो ईश्वर की सृष्टि में मिलती है। ये कथाएँ हास्यमय दृष्टि की विलक्षण शक्ति से ही ओत-प्रोत नहीं हैं, इनमें चरित्र-सृजन की शक्ति भी समाहित है। वस्तुतः

'साधुकथार कूकि' को देखकर यह कहा जा सकता है कि बेजबरुवा को कहानी कहने की कला पर अच्छा अधिकार है, और वे उसमें किसी भी प्रकार की अति-भावुकता नहीं आने देते। 'बुडि आइर साधु' और 'कका-देउता आरु नातिलोरा' की भाँति इस कृति में भी लेखक कृत्रिमता को त्यागने का प्रयत्न करके सरल, सहज और अन्तःस्फूर्त्त पर बल देता दिखाई पड़ता है।

निश्चित शब्दों में, लोककथाओं को हम निरक्षर जनों की आत्म-कथाएँ कह सकते हैं। वस्तुतः वे सामाजिक मुद्राओं के आलेख होते हैं। कुछ लोक-कथाओं में नीति-वचन होते हैं; कुछ में कथा-तत्त्व ही प्रधान स्वर होता है। उदाहरण के लिए 'बुडि आइर साधु' की कहानियाँ सरल लोककथाएँ हैं, उनमें कोई प्रत्यक्ष नैतिक संकेत नहीं है। तथापि वे गहरे मानवीय हित से अनुप्राणित हैं जिसका उद्‌घाटन एक ऐसी रीति से होता है जिसमें गहरी मानवीय सार्थकता की शिक्षाएँ सजीव हो उठती हैं। उदाहरण के लिए, एक उत्कृष्ट कथा है 'तेजिमला' जो 'कंचन' और 'चिलनि जियेकर साधु' इत्यादि गल्पों के समान ही सार्वभौम प्रभाव की कृति है। 'बूड़ा·बूड़ि' और 'स्याल' आदि कुछ अन्य कहानियों में मानवीय प्रत्युत्पन्नमतित्व का अविशेष रूप से चित्रण-चातुर्य है।

एक विशिष्ट प्रकार की मानवीय प्रकृति के अन्वेषण में अदम्य कौतूहल के धनी बेजबरुवा वरद कथाकार थे। ये कथाएँ सरल विचार और अबोध भावों के संसार की जीवन्त प्रतिच्छवियाँ हैं जो कथानक और स्थितियों के ललित निरूपण में लेखक की क्षमता द्वारा साकार हो उठी हैं। लोककथाओं में अबोध और सरल चिंतन के इस विश्व में पशु-पक्षी भी मानवीय कार्य-व्यापार में भाग लेते और संभाषण करते हैं; साधारण तर्क के अनुसार ये प्रकट ही असंभव कल्पनाएँ हैं। पर इन्हीं असंभव कल्पनाओं को बेजबरुवा ने अपनी लोककथाओं में सत्य और संभाव्य का रूप प्रदान कर दिया है। यह तत्त्व किशोरों के मन पर ही नहीं, वृद्धों के मन पर भी निर्भ्रान्त छाप छोड़ता है।

'जोनाकी' (१८८९) पत्रिका के तत्वावधान में उद्‌भूत हमारी आधुनिक कहानी, अन्य भारतीय प्रादेशिक साहित्यों की ही भाँति, पाश्चात्य साहित्य के संघात का ही प्रतिफल है। सन् १९१२ में बेजबरुवा की लोककथाओं का संग्रह 'कका-देउता आरु नातिलोरा' प्रकाशित हुआ था और उसी वर्ष उनकी कहानियों का प्रथम संग्रह 'सुरभि' प्रकट हुआ। उनकी कहानियों का अगला संग्रह 'जोन-बीरी' सन् १९१३ में प्रकाशित हुआ।

बेजबरुवा की कहानियों के सम्बन्ध में 'असमीज लिटरेचर' में कहा गया है कि : 'दृष्टिकोण में परम्परानिष्ठ होते हुए भी बेजबरुवा की कहानियाँ जीवन को स्वाभाविक रूप में, उसकी नैतिकता और प्राणवत्ता, उसके आह्लाद और विषाद के साथ चित्रित करने के सर्वप्रथम गम्भीर प्रयास हैं।.... उन्हें इस बात से बड़ी उलझन होती थी कि तथाकथित नवीन वर्ग विदेशी छत्रछाया में शीतलता पाता था और उसे सच्चा मानने की मूर्खता करता था; उनकी राष्ट्रीय भावना को इन अन्ध सामाजिक विवर्तनों से ठेस पहुँचती थी और वे स्विफ्ट की-सी दक्षता से उनका विद्रूप करते थे। ऐडिथ सिटवेल के शब्दों में उन्हें पढ़ना खट्टे सेब खाने के समान है।'

जिस काल में बेजबरुवा ने जीवन जिया और रचना की उसका यह करुण विरोधाभास था कि नवोदित वर्ग द्वारा विज्ञप्त समाज एक ही आयाम में समाहित हो गया था। मानवीय त्रुटियों को खोज निकालने में बेजबरुवा की दृष्टि अत्यन्त प्रखर थी और 'सुरभि' एवं 'जोनबीरी' की अधिकांश कहानियाँ इस तथ्य में विशेष रूप से प्रभावोत्पादक हैं। उदाहरण के लिए, 'भोकेन्द्र बरुवा' नामक कहानी में और उसके अनुवर्ती क्रम में बेजबरुवा विद्वेष अथवा निन्दा के बिना ही कतिपय फूहड़ प्रवृत्तियों का उपहास करते हैं : (१) अपने मूल नामों में ग्राम्यत्व की गन्ध मानकर कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की अपना नाम बदलकर तथाकथित आधुनिक चाल का नाम अपनाने की इच्छा। यद्यपि इस प्रकार उनके नाम उल्टे भ्रष्ट हो जाते थे; और (२) पुरातन सामाजिक आधारों से अपने-आपको काट लेने की इच्छा। इस प्रकार की भ्रष्ट प्रवृत्तियों में ब्रिटेन के बजाय बंगाल के निम्न मध्यवर्ग का प्रभाव ही अधिक परिलक्षित होता है।

उद्देश्य और प्रयोजन सभी दृष्टियों से भोकेन्द्र बरुवा 'अहम्मन्य' ही था। इस प्रकार के व्यापार में बेजबरुवा अत्यन्त संवेदनशील थे; उनका हास्य-बोध सबसे बड़ा अस्त्र था जिसका वे बड़ी निर्ममता से प्रयोग करते थे जैसा कि भोकेन्द्र बरुवा के प्रसंग में किया है। तथापि वे उसे भ्रष्ट नहीं होने देते थे। नवीन वर्ग की मनसा को दूषित करने वाली इस अहम्मन्य प्रवृत्ति को नष्ट करने में बेजबरुवा कितने सफल हुए यह कहना तो कठिन है, पर वे इस भ्रष्ट प्रवृत्ति पर त्रासदायी प्रकाश डालने में अवश्य सफल हुए। ऐडौसफस ने स्कॉट के संबंध में कहा है : 'उनके रचे हुए बिम्ब दिन-दोपहर के उजाले में हमारी दृष्टि के समक्ष

प्रत्यक्ष हो जाते हैं।' बेजबरुवा ने भी यही किया था; वे उन्हें अपनी स्मरण-शक्ति के सहारे उसी प्रकार देख लेते हैं मानो प्रत्यक्ष देख रहे हों। इनमें अधिकांश चरित्रों का परिचय वे शैशवावस्था से ही अपने आस-पास के जीवन में पा चुके थे और वे उनकी स्मृति में बद्धमूल हो चुके थे। बरसों कलकत्ता में रह चुकने के उपरांत उन्होंने अपनी स्मृति में बसे इन चरित्रों को निखारा और स्पन्दित विग्रहों के रूप में जीवन्त बना दिय।।

बेजबरुवा की विषय-वस्तु का अथवा उनके चरित्र-अनुशीलन का क्षेत्र सामान्य रूप से सीमित न था; वे अपने पात्रों की रचना तटस्थ तिरस्कार के स्थान पर हास्यपरक व्यंग्य द्वारा करते थे। क्षेत्र की उद्देश्यहीन सीमाहीनता लेखक को क्षुद्रताओं की ओर घसीट ले जाती है, और चाहे जिस कारण से हो, इस विषय में बेजबरुवा भी अपवाद नहीं हैं। यह ठीक है कि उनकी कुछ कहानियों में दृश्यगत प्रभाव और गति का प्राचुर्य है, तथापि, उनमें अधिकांश 'जीवन्मृत' ही कहला सकती हैं। यहाँ हम उनकी कहानियों और लोककथाओं में एक अन्तर पाते हैं; उनकी लोककथाएँ प्रांजल और स्वाभाविक हैं; पर उनकी कहानियाँ ऐसी शिल्पयुक्ति पर अधिकार प्राप्त करने की चेष्टाएँ हैं जिसे पाने में बेजबरुवा किसी-न-किसी कारण से असफल रहे हैं।

बेजबरुवा की कहानियों की विषय-सामग्री कुछ भी क्यों न हो, उनके संबंध में यह तो कहा ही जा सकता है कि वे सामान्यतया चुस्त हैं; वे ऐसी नहीं हैं जिन्हें 'सुन्दर रीति से तराशी गई प्रतिमाएँ' कहा जा सके। अधिकांश कहानियों में खट्टे व्यंग्य और हास्य के बावजूद, वे बर्बर शायद ही होती हों; और यह कहना तो बाहुल्य ही होगा कि बेजबरुवा जो भी रचना करते थे वह लेखक के रूप में उनकी सचाई को पुष्ट करने में सहायक होती थी। बेजबरुवा आत्म-चेतन असम-वासी थे। एच० सी० बरुवा (१८३५–९७) की रचनाओं से पता चलता है कि वे भी असमवासी थे, तथापि उनमें बस यही अन्तर था कि उनके असमवासी होने में किसी आत्म-चेतना का हाथ न था।

यद्यपि बेजबरुवा ने कुछ उत्कृष्ट चरित्रों की सृष्टि की है, तथापि चरम विश्लेषण से यही सिद्ध होता है कि उनकी प्रतिभा सर्जनात्मक की अपेक्षा समीक्षात्मक ही थी। उनकी रचनाओं के मूल गुण हैं—देश-भक्ति और एक प्रकार की नैतिक प्रतीति। 'भेमपुरिया मौजादर', 'जयन्ती', 'मिलारामर आत्मजीवनी', 'बापीराम', 'नंगलुचन्द्र', 'मलक गुइँ गुइँ' आदि ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें

चरित्र-अनुशीलन पर ही ध्यान केन्द्रित किया गया है; चरित्रों के उद्घाटन के लिए जिन परिस्थितियों का सहारा लिया गया है उनके निरूपण में भी उनके आचरण और व्यवहार के टकसाली गुणों पर ही बल दिया गया है। पाखण्ड और उद्दण्डता, दुर्बलता और आंग्ल-असम संकर संस्कृति का आग्रह आदि ही वे प्रकट विशेषताएँ हैं जो इन अति-घनीभूत चरित्रों द्वारा रूपायित की गई हैं।

'नंगलुचन्द्र' की विषय-वस्तु झीनी और कुरुचिपूर्ण है; इस विद्रूप को सहारा देने के लिए एक चरित्र का अकारण ही उपहास किया गया है। इसी प्रकार 'जागर मण्डलर प्रेमाभिनय' किंचित् व्यंग्यपूर्ण होने पर भी एक आकर्षक प्रकार की भंड़ैती है। कहानी के प्रधान चरित्र हैं जागर मण्डल और उसकी पत्नी, और उनके बीच का वैषम्य बड़े स्पष्ट रूप से उजागर करके हास-परिहास का लक्ष्य बनाया गया है। यद्यपि यह कहानी अर्द्ध-व्यंग्य मुद्रा में रची गई है तथापि बेजबरुवा की अधिकांश कहानियों की भाँति इसमें भी भाषा की भव्य सरलता है और वह युक्तियों एवं पैंतरों की कृत्रिमता से मुक्त है। 'घण्टाकर्ण शर्मा' भी ऐसी ही उद्देश्यहीन कहानी है। परन्तु 'धर्मध्वज फैसलानवीस' ऐसी नहीं है। इसकी पृष्ठभूमि सटीक रूप में सामाजिक है; इसमें धर्म के नाम पर होने वाली निरर्थक सामाजिक रूढ़िवादिता के विरुद्ध प्रखर प्रहार किया गया है। इसके अतिरिक्त 'भेमपुरिया मौजादर', 'घोआं खोवा', 'ऐराबारी' आदि कहानियों में तथाकथित नवोदित वर्ग के पाखण्ड और सामाजिक मूढ़ता का भंडाफोड़ किया गया है तो 'भोकेन्द्र बरुवार लीला', 'मलक गुइँ गुइँ', 'डम्बरु-घरर संसार' आदि कहानियों में ऐसे तथाकथित नई चाल के लोगों का व्यंग्य-मिश्रित आलोचनात्मक उद्घाटन किया गया है जिनकी कतिपय नव-अर्जित मूल्यों के प्रति आसक्ति यथार्थ की अपेक्षा विडम्बना ही है।

उपदेशात्मक सामाजिक उद्देश्यता के बावजूद शिल्प-सौष्ठव की दृष्टि से 'ऐराबारी' की योजना और विवृत्ति रोचक है। बेजबरुवा की कुछ अन्य कहानियों की भाँति इस कहानी में भी स्वप्न-तत्त्व का समावेश उद्देश्य की सुविधा के लिए किया गया है। कहानी का सामाजिक आकलन, विशेषतया वह स्थल जहाँ सारु बौके जीवन का करुण अन्त होता है, त्रासदायक है। इसी प्रकार 'मैदाम' कहानी में दृष्टि की गम्भीरता है; इसमें इतिहास के एक अमानुषिक अध्याय पर प्रकाश डाला गया है। कहानी में स्वप्न-तत्त्व के समावेश के बावजूद, वर्णन

में ऐसे कौशल से काम लिया गया है कि स्वप्न भी जीता-जागता सत्य प्रतीत होता है। 'मोर सइते मोनाइर दण्ड' नामक कहानी का संदर्भ प्रतीकात्मक है; कथा के अन्त में चेतन और अचेतन मन का द्वन्द्व प्रतीक रूप में अभिव्यक्त किया गया है। 'लोभ' नामक कहानी में एक कोमल तथ्य की प्रतीति में स्वप्न-शिल्प एक नया आयाम जोड़ देता है।

'नकउ', 'जल कुँवरि', 'कन्या', 'भादरी' आदि कहानियों में न तो परिस्थिति ही चरित्रों पर हावी होने पाई है न चरित्र परिस्थिति पर, दोनों तत्त्व एक संरचनात्मक सौंदर्य और दृष्टिगत अतिशयता के साँचे में ढल गए हैं। 'नकउ' में वातावरण से उत्पन्न चारित्रिक वैषम्य प्रस्तुत किया गया है। दूसरी ओर, उन्हीं-की कुछ कहानियाँ (यथा : 'मिलारामर आत्मजीवनी', 'भोकेन्द्र बरुवार लीला', 'नंगलुचन्द्रदास' आदि) मोटे रूप में निबन्ध हैं, न तो उनमें कथानक की अन्विति है न उद्देश्य की। 'कनकलता' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाली एक प्रणय-कथा है, इसमें जीवन की पूर्ति इतिहास करता है जिसमें परोक्ष रूप से कतिपय सामाजिक प्रवृत्तियों की समालोचना भी निहित है।

'लाओखोला', 'मालती', 'सेउती', 'कन्या', 'रतनमुण्डा', 'भुमकरोला', 'पुत्रवान पिता' आदि बेजबरुवा की कुछ कहानियाँ विषाद के अन्त:स्वर से ओत-प्रोत हैं। 'भादरी', 'नकउ', 'जयन्ती', 'चोर', 'अमालोई नैपाहड़िबा' आदि कहानियों का सुखान्त लक्षणीय है यद्यपि उनमें करुण प्रभाव का अन्त:स्वर है। 'लाओखोला', 'पुत्रवान पिता', 'डाक्टर बाबुर साधु', 'पण्डित मोशाइ', 'भुरुकि बान' आदि कहानियों में बंगाली जीवन और समाज की प्रतिच्छवियाँ हैं। जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है, अपने विवाह के माध्यम से बेजबरुवा बंगाली समाज से जुड़े हुए थे।

वैवाहिक सम्बन्ध के माध्यम से बंगाली समाज से जुड़े रहने के अतिरिक्त कलकत्ता के सम्पन्न व्यापारी भोलानाथ बरुवा के सम्पर्क ने भी बेजबरुवा को दो विश्वों से परिचित कराया : (१) व्यावसायिक विश्व; और (२) कलकत्ता के संभ्रान्त वर्ग का विश्व। वृत्ति से सम्बलपुर (उड़ीसा) में इमारती लकड़ी के व्यापारी होने के कारण बेजबरुवा को कोल-मुण्डा आदि जनों से दैनन्दिन सम्पर्क स्थापित करने में बड़ी सुविधा हुई। इन सब अनुभवों ने मिलकर बेजबरुवा को अपने साहित्य-सृजन और विषय-क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य को विस्तृत करने में बड़ी सहायता दी। दूसरी ओर, 'जैने चोर तेने तनगौन' जैसी उनकी कुछ कहानियाँ खुले

रूप में भँड़ैती के प्रकार की है। बर्गसाँ ने कहा था कि हास्य विसंगतियों का परिणाम है। बेजबरुवा एक प्रकार से चरित्र और स्थिति के चित्रण द्वारा हास्य की सृष्टि करने में बड़े दक्ष थे।

'डॉक्टर बाबुर साधु', 'मैदाम', 'मालती' आदि कहानियों में प्रयुक्त अलौकिक तत्त्व निरर्थक-सा प्रतीत होता है, तथापि यह तत्कालीन समाज में प्रचलित विश्वास का ही अंग है। दूसरी ओर यह कहना भी उचित है कि इन कहानियों का शान्त सौन्दर्य अलौकिक तत्त्वों के समावेश की उग्रता से कुछ विक्षत हो जाता है। इसके अतिरिक्त, संयोगों और दुर्घटनाओं का कृत्रिम संयोजन आधुनिक कहानियों के उपयुक्त युक्तियाँ नहीं हैं, क्योंकि यदि स्वाभाविकता किसी भी कला की प्रथम प्रावश्यकता है तो आधुनिक कहानी की; कला की इस विधा में बरबसता को कोई स्थान नहीं मिलना चाहिए। बेजबरुवा की कहानियों में बिखराव तो है ही, क्योंकि यह उनकी प्रमुख विशेषता थी, उसके अलावा उनमें प्राय: वे सारे दोष भी उपस्थित हैं जो साहित्य विकास के संक्रान्ति काल को उत्तराधिकार में मिलते हैं। पर इसीके साथ-साथ यह कह देना भी उचित होगा कि बेजबरुवा की कुछ कहानियाँ उच्च कोटि की हैं। 'सेउती' में मूढ़ समाज द्वारा एक अबोध नारी पर किये गए अमानुषिक अत्याचारों का चित्रण है।

नाटकीय कौतूहल, चरित्र अनुशीलन और मानव-स्वभाव की दृष्टि से 'बापीराम नामक कहानी निरन्तर उच्च स्तर पर चलती रहती है; इसमें चायबागान के जीवन का चित्रण है, विशेष रूप से एक क्लर्क के अनैतिक विपर्यय का, जो अपनी पदोन्नति के लोभ में अपनी युवा विधवा बहन तिलिका को चायबागान के यूरोपियन मैनेजर को सौंप देने का षड्यंत्र रचता है। इस नैतिक पतन की तुलना में परिवार के स्वामि-भक्त सेवक बापीराम का अटल चरित्र स्वर्ण की भाँति जगमगाने लगता है। मानव-स्वभाव की एक और कहानी है 'मिस्टर-फिलिपसन', जिसमें एक एंग्लो-इण्डियन मैनेजर के नैतिक विपर्ययों के प्रकाश में चायबागान के जीवन का चित्रण किया गया है। तरल भाव से ओत-प्रोत यह कहानी भी बेजबरुवा की अगंभीर शैली के कारण विक्षत हो जाती है।

निष्पक्षता के नाते हम कह सकते हैं कि बेजबरुवा की कला अतिशयोक्ति की कला थी; वे विडम्बना, व्यंग्य विद्रूप और परिहास सभी का प्रयोग करते थे पर ये सब-के-सब तत्त्व जीवन के प्रति उनके विशिष्ट आस्फालित दृष्टिकोण के वशवर्ती होते थे। व्यंग्य तथा विडम्बना उनके तईं न तो मत्सर थी न घृणा या

द्वेष। बेजबरुवा ने दो भिन्न विश्वों का चित्र अंकित किया है और वह ऐसी भाषा में किया गया है जो मूर्त्त, विशद और चित्रमयी है। ये दो विश्व हैं: (१) असमिया संस्कृति का विश्व; और (२) ब्रिटिश शासन के अधीन संक्रान्ति का विश्व, जिसकी प्रेरणा विशेषतया बंगाल से मिली थी।

प्राचीन रूढ़ियों और जड़ नियमों के विरोध ने बंगाल में तो सर्जनात्मक अभिव्यक्ति का रूप लिया, यथा ब्राह्म समाज आन्दोलन, परन्तु असम में नवोदित वर्ग द्वारा संदिग्ध मूल्यों की असम्बद्ध अनुकृति ने एक संकर मानसिक ग्रन्थि को जन्म दिया। इससे बेजबरुवा को मर्मान्तक कष्ट होता था। तथापि यह भी सही है कि बेजबरुवा की कथनी और करनी में भेद था। यह सच है कि मूलतः असमिया तत्त्व में बरबस प्रविष्ट होने वाले विदेशी सांस्कृतिक संघात का उन्होंने भरसक प्रतिरोध करने की चेष्टा की थी: पर यह उनके तईं एक साहित्यिक संघर्ष ही था जो उनके निजी जीवन में प्रतिबिम्बित नहीं हुआ। उनके बच्चे उन्हें 'पापा' कहते थे और उनके घर में दैनिक बोल-चाल की भाषा बंगला थी। बेजबरुवा की बेटी सुरभि जो बड़ी प्यारी बच्ची थी और जिसका पाँच वर्ष की कच्ची आयु में ही देहान्त हो गया, सिर्फ अंग्रेजी और हिन्दी ही जानती थी। उनके सम्मान को चोट पहुँचाए बिना ही हम कहना चाहते हैं कि बेजबरुवा बुर्जुआ संस्कृति के टकसाली प्रतीक थे।

अन्य साहित्यिक सर्जनात्मक विधाओं में सफल होने के बावजूद बेजबरुवा को उपन्यास के क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। न रजनीकान्त बरदलै (१८६७—१९३९) के 'दण्डुवा द्रोह' (१९०९) के कथानक पर रचे गए उनके एक-मात्र उपन्यास 'पदुम कुँवरि' (१९०५) में संभावना के ही चिह्न हैं। उपन्यास की कथा अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से सम्बद्ध है। इस रंगीन कथा का घटनास्थल है गौहाटी और उसका निकटवर्ती भूटान पर्वत प्रदेश।

'पदुम कुँवरि' की कथा एक ऐतिहासिक तथ्य पर टिकी है; अर्थात् बड़फुकन और हरदत्त के संभ्रान्त परिवारों के सामन्तीय कलह पर। पर जिस भी कारण से हो, इस उपन्यास में अंकित इतिहास कथानक को केवल एक धुँधला परिप्रेक्ष्य और एक रेखांकित पार्श्व मात्र ही दे पाता है; उसमें प्रमुखता एक ओर तो पदुम कुँवरि और सूर्यकुमार के प्रणय-प्रसंग को और दूसरी ओर सूर्यकुमार के प्रति फूल के प्रणयाकर्षण को ही मिलती है। एक पुरुष और दो कामोद्वेलित युवतियाँ, यदि लेखक ने कथानक को ढीले-ढाले ढंग से न लिया होता, तो अमर

त्रिकोण उपस्थित कर सकती थीं। जो हो, एक पूर्व-कल्पित अति नाटकीय परिणति स्थिति को कृति में निहित एक प्रकार की रोमाण्टिक अति द्वारा ग्रसित होने से बचा लेती है।

पदुम कुंवरि और सूर्यकुमार के जीवन का असाधारण अन्त शेक्सपियर के 'रोमिओ एण्ड जुलिएट' की श्रेष्ठ परम्परानुसार अंकित किया गया है। एक गलित प्रकार की भावुकता के कारण पदुम कुँवरि असफल अनुकृति बन जाती है। आवेगों के उत्कर्ष में शेक्सपियर का अतुकान्त छन्द जो सफलता पा सका है वह बेजबरुवा का निस्पन्द गद्य नहीं पा सका है। उपन्यास का अन्त अतिनाटकीय है; कथानक का सर्वाधिक अतिनाटकीय अंश है पदुम कुँवरि और सूर्यकुमार के समाधि-स्थल पर फूल का आत्म-बलिदान। ऐसा निष्कर्ष तो रोमाण्टिक सत्य से भी दूर है; भावुकता का सत्य सर्वदा रोमाण्टिक सत्य नहीं हो पाता।

बेजबरुवा ने उपन्यास में कुछ अनैतिहासिक पात्र भी प्रस्तुत किए हैं जैसे फूल, कुर्मा और कुर्मी। वे उनकी मौलिक सृष्टि हैं। ऐसा नहीं है कि इन पात्रों ने कथा के उद्घाटन में सहयाता दी हो; वे तो कठपुतलियाँ हैं; स्थिति जिन परिस्थितियों को जन्म देती है वे उसके शिकार हैं। कथा का आरम्भ सरल प्रवाहयुक्त है; उसका अन्त अप्रत्याशित और एक पूर्वकल्पित निष्कर्ष की ओर बरबस अग्रसरित है। शिल्पगत युक्तियों से हीन, 'पदुम कुँवरि' अधिक-से-अधिक विचित्र पात्रों का एक संग्रह है। ये पात्र शेक्सपियर अथवा टॉमस हार्डी के पात्रों की भाँति नियति के हाथ की कठपुतलियाँ न होकर डिकिन्स के पात्रों की भाँति भोंडी घटनाओं और परिस्थितियों के हाथों की कठपुतलियाँ हैं। निम्नांकित उद्धरण की भाँति विभिन्न अध्यायों के शीर्ष पर अकित उद्धरण ऐतिहासिक कथानक के सम्बन्ध में लेखक की रोमांटिक समझ का सँकेत देते हैं। संक्षेप में कहें तो कथा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रोमाण्टिक उच्छ्वास के कारण दब-सी जाती है :

In vain he weeps, in vain he sighs,
her cheek is cold as ashes;
Nor love's own kiss shall wake these eyes
To lift their silken lashes.

—T. CAMPBELL

कहानी सुनाने का उत्साह शायद ही कभी किसी का सफल उपन्यासकार बनाता हो; उपन्यास के लिए चुने गए कथानक की समझ और फिर उस समझ को शिल्पादर्शों में ढालने के लिए यह आवश्यक है कि लेखक में प्रतीति की गहराई हो और अतीत ही नहीं वर्तमान के अंत:प्रवाहों से तादात्म्य स्थापित करने का सामर्थ्य हो। इन गुणों के अभाव में उपन्यास-लेखन जैसे साहित्यिक प्रयास केवल छेड़-छाड़ बनकर ही रह जाते हैं। बेजबरुवा के साथ भी यही हुआ है। उनका उपन्यास 'पदुम कुंवरि' ऐतिहासिक संघर्ष को प्रस्तुत नहीं कर पाता। उसके लिए तो हमें रजनीकान्त बरदलै के 'मनोमती'* (१९००) की शरण लेनी पड़ती है। उसमें तो बस तीन युवा और अपरिपक्व प्रणय-त्रस्त आत्माओं का रोमाण्टिक संघर्ष ही मिलता है जिसकी प्रक्रिया में इतिहास ही नहीं उपन्यास के रूपबन्धीय सिद्धान्त भी साहित्य-सृष्टि के उपेक्षित भँवर में पड़ जाते हैं।

---

* इस उपन्यास का हिन्दी संस्करण साहित्य अकादेमी से प्रकाशित हो चुका है।

कवि के रूप में

'मानव प्रज्ञा का आत्मीय प्रस्फुटन तभी संभव है जब प्राचीन परम्परागत बंधन खुल चुके हों और उनका स्थान नये बंधन अथवा नई रूढ़ियों ने न ले लिया हो। जिस प्रकार जर्मन साहित्य में ऐसा प्रस्फुटन गेटे के युग में मिलता है, उसी प्रकार लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा और चन्द्रकुमार अग्रवाला द्वारा प्रवर्तित 'जोनाकी' (१८८९) का युग असमिया साहित्य में वैसी ही मुक्ति और उपलब्धि का दृश्य उपस्थित करता है।····· ऐन्द्रिकता, रंगाल्हाद, पार्थिव सौंदर्य, प्रणय और काव्य के अपने गुणों के द्वारा वे यह प्रदर्शित करते हैं कि रोमाण्टिक कवि सामान्यत: किन पथों पर अग्रसर होते हैं।'[1]

बेजबरुवा को प्रणय-गीति, प्रकृति-काव्य, वीर काव्य और स्वदेश-गीतों की रचना का श्रेय है; बेजबरुवा की रोमाण्टिक प्रतिभा की अग्नि 'धनबरु आरु रतनि'-जैसे छन्दोबद्ध प्रणयाख्यानों में जीवंत ज्वाला बनकर लपट उठी है। प्रेमिका की पार्थिव कमनीयता से सम्बद्ध उनकी कविता 'प्रियतमार सौंदर्य' असमिया साहित्य की ऐन्द्रिक प्रणय की अन्यतम कविताओं में है। कविता का सौन्दर्य उस बिम्ब-परम्परा में निहित है जिनके द्वारा प्रेमिका का सौन्दर्य संकेतित किया गया है।

मैंने कभी मोतियों की माला नहीं देखी
हालांकि उसकी चर्चा अक्सर सुनी है;
मैंने प्रियतमा को पुकारा और मुस्करा दिया,
वह उत्तर में मुस्कराई और मोतियों की माला चमक उठी।

यद्यपि यह ऐन्द्रिक प्रणय की कविता है, तथापि इसमें प्रणय का चित्रण ऐन्द्रिक तत्त्व-मात्र के रूप में ही नहीं : वरन् आत्मा के दर्शन के रूप में भी किया गया है। वस्तुत: उसका विषय सौन्दर्य का 'कम्पित काम-शयन' वाला पार्थिव

---

१. 'असमीज़ लिटरेचर', १९६५

आकर्षण ही नहीं है, वरन् बाल रूप के मुरझाने के बाद भी चिरन्तन रहने वाला प्रेम है।

मुझे प्रणय की वह मदिरा दो
जो शाश्वत सम्मोहन जगाती हो

बेजबरुवा के तईं प्रकृति प्रणय और सौन्दर्य का भण्डार है; कवि वह वरद आत्मा है जिसे उसको खोलने के लिए सोने की चाभी मिली है। यद्यपि मनुष्य का जीवन मृत्यु से बँधा है तथापि प्रेम मृत्यु के बीच भी सदा बना रहता है, रवीन्द्र-नाथ की ही भाँति बेजबरुवा में भी।

प्रेम विजयी बनता है
और मृत्यु उसकी दासी।

बेजबरुवा की प्रणय-भावना में वही अकृत्रिम सौन्दर्य है जो वृक्ष या फूल में होता है; वह सारल्य की एक उदग्र दीप्ति से आलोकित है जो कवि की अपनी है। जो हो, बेजबरुवा की कल्पना ने सरल लोकधुनों और वीरगीतों से रस ग्रहण किया था, विशेष रूप से उनकी प्रज्ञा चारण कवि की ही भाँति संगीतमयी थी। उन्हें अल्हड़-अबोध जनों के आवेगों को अभिव्यक्ति देना सर्वाधिक पसन्द था। वे आनन्द के कवि थे, परितृप्ति के कवि थे; उनका आनन्द सरल किसान का आनन्द था। वे वीर-काव्य के दोलायमान छन्द में किस सहजता और लाघव से विचरण करते थे यह उनकी 'मालती'-जैसी रसमयी गीतियों से प्रमाणित होता है।

कवि के रूप में बेजबरुवा दो विश्वों के वासी थे : (१) सचेत कला का विश्व; और (२) प्राकृत लोक-काव्य का विश्व। भावना और स्वर दोनों की दृष्टि से 'मालती' में सरल लोक-संगीत समाहित है। बेजबरुवा के काव्य की एक और उल्लेखनीय विशेषता है; अवसादपूर्ण चिन्तन का अभाव। उनकी कविता में कवि की आत्मा, कवि की मनस्थिति, कवि के दुःख अथवा कवि की मानसिक व्याधि आदि का कोई वैयक्तिक विश्लेषण नहीं है, जैसा कि तत्कालीन रोमाण्टिक कवियों में पाया जाता है। वैयक्तिक यंत्रणाओं और स्मृतियों की अनुपस्थिति बेजबरुवा के काव्य के आन्तरिक आकर्षणों में है।

बेजबरुवा की काव्य-रचनाओं के अनुसार उनका प्रकृति-चित्रण एक ऐसे

व्यक्ति की कृति है जिसे दृश्यांकन के आग्रह का वरदान मिला हो। उसमें एक जीवंत चेतना निहित है, आदिम शिशुवत् आत्माओं की-सी पारदर्शी चेतना। कवि ने प्रकृति का सहज आनन्दवाद स्वीकार कर लिया है और उसे समस्त वादों से मुक्त आध्यात्मिकता से समंजित कर लिया है। सच्चे वैष्णव की भावना की भाँति उन्हें प्रकृति के क्षुद्र-से-क्षुद्र व्यापार में भी एक शाश्वत आध्यात्मिक सत्य के दर्शन मिलते हैं।

पैरों तले कुचली दूब की पत्ती भी
दिव्यता की श्वास से स्पन्दित है।

बेजबरुवा के प्रकृति-चित्र आनन्द के निबिड़ उल्लास और चिन्ता से सम्पूर्ण मुक्ति द्वारा निरूपित है। उनकी सरल और सहज-प्रसन्न शैली मानव के प्रीतिकर रूप का प्रतिबिम्बन करती है।

शंकरदेव और माधवदेव आदि वैष्णव सन्त-कवियों के दर्शन से पोषित होने के कारण बेजबरुवा ने यह प्रतीति की कि सृष्टि में एक गहन आध्यात्मिक उद्देश्य समाहित है। 'ईश्वर आरु भक्त', 'वह्नि', 'महाप्रयाणर यात्री' आदि उनकी कविताएँ आध्यात्मिक भावों पर आधारित हैं। 'प्राकृत जीवन', 'सुखबोध', 'मान-अपमान' आदि कुछ कविताओं में उन्होंने प्रांजल रीति से नैतिक वचनों को अभिव्यक्ति दी है। तथापि वे नलिनी देवी (जन्म : १८९८) अथवा अम्बिका-गिरि रायचौधुरी (१८८५—१९६७) की भांति रहस्यवादी कदापि न थे।

'कविता' नामक अपने प्रगीत में बेजबरुवा ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार की है :

अवसाद का गान, एक कलपती तान
भग्न हृदय का विलाप
पलकों पर छाये आँसू
एक व्यथामयी अस्थिरता।

तथापि बेजबरुवा की रचनाओं में यह रोमाण्टिक आदर्शवाद प्रतिबिम्बित नहीं होता; वे यह स्वीकार करने को तैयार न थे कि यह विश्व माया है, छायाओं की क्रीड़ा है। उनके तईं जीवन ही सत्य था।

और जो चाहें कहें,
यह जीवन स्वप्न नहीं है ।

बेजबरुवा ने जीवन को दार्शनिक तटस्थता के भाव से स्वीकार किया था; उनका जीवन-दर्शन न तो अवसादग्रस्त था न नैराश्यपूर्ण; न उन्होंने लक्ष्मीधर शर्मा की भाँति मृत्यु को ऐन्द्रिक आनन्द से मण्डित किया था। यद्यपि उनकी प्रेरणा प्रधानतया पश्चिम के साहित्यिक वादों से निःसृत थी, तथापि स्वयं बेजबरुवा उनमें बह नहीं गये। 'असमीज लिटरेचर' में कहा गया है : 'हमें एक बात और याद रखनी चाहिए : यद्यपि ब्रिटिश शासन में हमारा साहित्य अंग्रेजी साहित्य से पर्याप्त प्रभाव और प्रेरणा पाता रहा है, तथापि वे क्षुद्र जल-रेखाएँ शीघ्र ही एक ऐसी नदी में समा गईं जिसका उत्स कहीं अधिक पृथुल स्रोत से हुआ था।' बेजबरुवा ने अपनी कला की वस्तु ही में नहीं अपितु उसके शिल्प में भी अपनी निर्भ्रान्त विशिष्टता अक्षुण्ण रखी है।

वीर-कथा बेजबरुवा की प्रकृत भूमि है; 'फूलकुँवर', 'मणिकुँवर', 'बड़फुकनेर गीत' जैसी जनप्रिय वीर-कथाओं की बात छोड़ भी दें तो बन-गीत और बिहू-गीत आदि लोक-गीतों के समृद्ध भण्डार ने उनकी रोमाण्टिक प्रेरणा की ज्वाला जगाई थी। उसमें पश्चिम के उन रोमाण्टिक कवियों के आदर्शों का भी योग था जिन्होंने अपने ग्राम-जीवन की वीर-कथा-परम्परा का पुनः सृजन और संप्रेषण किया था। परम्परागत लोक-गीतों की तुलना में ये नवीन साहित्यिक रचनाएँ 'कलात्मक' कहलाती हैं। साहित्यिक व्यक्ति के रूप में बेजबरुवा के स्वभाव का मेल नागरिक परम्पराओं की अपेक्षा ग्रामीण परम्पराओं से अधिक था अतः वे ग्राम-गीतों के रोमाण्टिक वातावरण में सहज ही प्रविष्ट हो जाते थे। वे बहुधा लोक-गीतों के टुकड़ों और धुनों को समेटकर अपने मन के खरल में डाल लेते थे और उनका अपनी वीर-कथा-रचना के लिए मसाले के रूप में उपयोग करते थे। उदाहरण के लिए :

मैं पहाड़ियों और पर्वतों पर चढ़ा हूँ
पर बेलों पर चढ़ना बड़ा कठिन है।
मैं बिगड़े हाथियों को वश में कर सकता हूँ
पर तुम्हारे प्यार को वश में करना बड़ा कठिन है।

यह लोक-धुन बेजबरुवा की सुन्दर कृति 'धनबर आरु रतनि' में ज्यों-की-त्यों अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार से वह रचना असमिया जनों की निजी लोकगीत-परम्परा से तो सम्बद्ध हो ही जाती है, रोमाण्टिक वातावरण की सृष्टि करने में भी समर्थ होती है।

अपने शब्द-चयन और बिम्ब-विधान में बेजबरुवा बड़े प्रामाणिक रूप से असमिया मानस का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'धनबर आरु रतनि' नामक रचना में प्रयुक्त सखिनी, जखिनी शब्दों से यह सहज ही जाना जा सकता है। लोक-संगीत की श्रेष्ठ परम्परा में रचित इस कृति में नदी के बालू-तट पर चिड़ियों की क्रीड़ा का चित्र वैषम्य द्वारा प्रमी के एकाकीपन का संकेत देता है। आदिम उद्वेग और सरल संगीत से पूरित इस रचना में कहानो नदियों के प्रवाह की पृष्ठभूमि में उद्घाटित होती है। अभागा प्रेमी धनबर दिखउ तट का मीरी तरुण है, इस नदी का वातावरण और परिवेश बिहू-गीतों और बन-गीतों के रोमाण्टिक अनुषंगों से आपूर्ण है। प्रेम की मारी तरुणी रतनि धनसिरी तट की है जो सरल अबोध मीरी जनों का प्रसिद्ध निवास है। कथा का उद्घाटन दोनों प्रणयियों के स्वगत-कथनों के माध्यम से किया गया है। धनबर का विलाप अपेक्षया अधिक मार्मिक है, उसमें आद्योपान्त शोक-गीत की-सी विह्वलता है। कविता का प्रत्येक चरण तीक्ष्ण नाटकीय शक्ति और प्रदीप्त छन्द-सौंदर्य से ओत-प्रोत है। 'रतनिर विलाप' शीर्षक दूसरा स्वगत-कथन कोयल की कूक की भाँति वेदनापूर्ण है जो हृदय में बस जाता है।

रतनि शाश्वत नारी का प्रतिरूप है, वह मूल नारी-भावना के अत्यन्त निकट है। धनबर 'चिन्ता से पीले पड़े चेहरे' वाला तरुण है जो मृत्यु-मार्ग से ही अपने विरह की पीड़ा से मुक्ति पाता है। वह ब्रह्मपुत्र के शीतल आश्लेष में ही (साधारण जन ब्रह्मपुत्र को लुइत कहते हैं) अपनी आल्हादमयी वेदना के साथ मृत्यु की शरण प्राप्त करता है।

> हे पिता लुइत,
> मुझे अपनी शरण मेंले लो,
> मुझे अपने अंक में स्थान दो,
> रतनि चली गई है,
> अब सब समाप्त हो चुका है,

'घनबर आरु रतनि' एक उच्छ्वसित पवित्र प्रणय-कथा है जो आदर्शीकृत ग्रामीण दृश्य-पट को रंग और संगीत से भर देती है। दूसरी ओर है 'मालती' जो अघ्रात सौन्दर्य का अंकन करने वाला प्रणय-प्रगीत है। बेजबरुवा का संगीत आत्मीय, विशिष्ट और शान्त एवं मधुर रूप के नैतिक सौष्ठव से अनुस्यूत है।

बेजबरुवा मूलतः देशभक्ति के कवि हैं, वे असम के राष्ट्रीय गीत 'ओ मोर आपनर देश' के स्रष्टा हैं। रॉबर्ट ब्राउनिंग की रचना 'होम थॉट्स फ्राम एब्रॉड' की भाँति यह नन्हा कविता अपनी जन्मभूमि के सम्बन्ध में एक स्वेच्छया निर्वासित जन का स्वप्न-रूप है। उसमें ऐसे हृदय की कोमलता भरी हुई है जो अपनी मातृभूमि की अनन्त और विविध कमनीयता को स्वप्न में साकार करता है।

ओ मेरी जन्मभूमि,
ओ मेरी प्रिय मातृभूमि,
मृदु सरिताओं की भूमि,
फल-फूलों से भरी
तुम मेरे मन में बसी हो।

देश की मातृवत् कल्पना जो मूलतः भारतीय है और जो बंकिमचन्द्र के गीत 'वन्दे मातरम्' में प्रकट है, बेजबरुवा के गीत 'ओ मोर आपनर देश' में भी निहित है।

बेजबरुवा के कुछ स्वदेश-गीत अत्यंत प्रखर और ओजस्वी हैं। 'वीण आरु वैरागी' नामक वैरागियों का गीत ऐसा ही गीत है जिसमें प्रतीक देशभक्ति के प्रचण्ड आवेग का रूप ले उठता है, इस कविता में ऐतिहासिक अतीत की परिचित प्रतीकात्मकता अपने सौन्दर्य और गौरव में स्पष्ट और विशद है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वैरागी का स्वर खोये हुए अतीत के प्रति आवेगपूर्ण प्रतिक्रियाओं से प्रकम्पित आज का स्वर है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि इस कविता में पुनर्जाग्रत असम की भावना व्यक्त हुई है, बायरन के 'आइल ऑफ ग्रीस' की भाँति। इसमें विविध बिम्बों के माध्यम से अतीत के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है।

शब्दाडम्बर से मुक्त, बेजबरुवा का काव्य-कौशल, उनके गद्य से भिन्न, संयम और शब्दों की मितव्ययता के लिए दर्शनीय है। कवि की कला के इस

पहलू का एक सटीक उदाहरण 'असम संगीत' में मिलता है :

हम निर्धन नहीं हैं, हम कभी निर्धन नहीं होंगे
हमारे पास सब-कुछ था, हमारे पास सब-कुछ है ;
हमें उनका ध्यान नहीं है, हम उन्हें नहीं जानते ।

'असम संगीत' की प्रभावोत्पादकता का कारण अतीत के स्मरण अथवा चरित्र-चित्रण में नहीं है, उसका कारण है रूप का ओज और कविता में निहित ऐतिहासिक कल्पना की प्रभा। दैनन्दिन जीवन के शब्दों से युक्त बेज-बरुवा के काव्य की भाषा लोकप्रिय भी है और कलात्मकता से पूर्ण भी ।

संक्षेप में, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बेजबरुवा की कृतियों की अपनी निजी सीमाएँ हैं। कोई आधी दर्जन कविताओं को छोड़कर शेष रचनाओं से यही प्रकट होता है कि उनकी काव्यगत उपलब्धि सामान्यतया विरल है। यह विरलता वैसे बौद्धिक अक्षमता का परिणाम नहीं है। बहुधा विरलता बौद्धिक प्रौढ़ता का भी परिणाम होती है। बेजबरुवा उसीके प्रतिनिधि हैं। यद्यपि उनकी प्रेरणा का प्रमुख स्रोत अंग्रेजी साहित्य था, उन्होंने विदेशी भूमि की कूक का भी अनुकरण नहीं किया। यह वैशिष्ट्य उन्होंने अपनी सभी कृतियों में बड़े कौशल से अक्षुण्ण रखा।

कीट्स ने कहा है 'या तो कविता ऐसे सहज रूप से आये जैसे पेड़ में पत्ते आते हैं, या फिर न आये सो ही अच्छा !' निश्चित शब्दों में कहें तो इसमें संदेह है कि बेजबरुवा के मन में कविता ऐसे ही आती थी जैसे 'पेड़ में पत्ते आते हैं।' यही कारण है कि उनकी कविता अक्सर ठस और, एक अन्य सन्दर्भ में प्रयुक्त आल्डुस हक्स्ले के शब्दों में 'निर्वीर्य एवं मंदाग्नि से ग्रस्त' लगती थी। उनकी कविताओं का संकलन 'कदमकली' नाम से १९१३ में प्रकाशित हुआ था ।

उपसंहार

मोटे तौर पर कहें तो जीवन अक्सर विचित्र और अपव्ययी होता है, बेजबरुवा का मूल्यांकन करते समय हमें यह तथ्य भूलना नहीं चाहिए। उच्च उदार स्वभाव, साहसमयी भावना और 'आधारभूत हित-चिन्तन'—ये सारे गुण उनकी रचनाओं में बड़े सुन्दर ढंग से प्रकट हुए हैं। डिकिन्स की भांति बेजबरुवा की भी हरेक बात द्रुत होती थी—दर्शन, श्रवण, भावन, अंग-चालन और लेखन सब। दूसरे शब्दों में, बेजबरुवा ने मानो कार्लाइल के 'सर्वग्रासी नेत्र और चित्र-दक्ष हाथ' तो प्राप्त कर लिए थे परन्तु न जाने क्यों, वे उनका 'रूपान्तरकारी स्पर्श' प्राप्त नहीं कर पाए। अपनी समस्त त्रुटियों और खूबियों के मेल से बेजबरुवा प्रकट ही पक्के और मँजे हुए लेखक थे जिनके तत्त्वावधान में भाषा गौरव के शिखर पर चढ़ी। मोटे शब्दों में, उनकी साहित्यिक चर्या 'जोनाकी' (१८८९) से प्रारंभ हुई। यह पत्रिका हमारे साहित्यिक पुनर्जागरण का दिशा-संकेत कही जा सकती है। उनका साहित्यिक जीवन अर्द्ध शताब्दा में व्याप्त था, वे 'वह्नि', 'ऊषा', 'आवाहन' आदि पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखते थे।

बेजबरुवा जिस युग में साँस लेते और रचना करते थे वह ऐसा युग था जब असमिया समाज में स्वर और सामंजस्य का अभाव था। ब्रिटिश शासन के पूर्ववर्ती वर्षों की घटनाएँ और असम में उसके प्रारंभिक संघटन के वर्षों की घटनाएँ हमारे सामाजिक ताने-बाने में अनेकों रूक्ष विभेदों और विरोधों को जन्म दे चुकी थीं। सूक्ष्म शब्दों में, बेजबरुवा असमिया जीवन की विविध भंगिमाओं से निबिड़ रूप में सम्बद्ध थे जिनका उन्होंने अपनी कृतियों में हल्की-गहरी छटाओं से प्रतिबिम्बन किया है। उनकी प्रतिभा व्याख्यात्मक थी। फिर भी हम कह सकते हैं कि वस्तुओं को ऐसे कोणों से देखने की उनमें अनोखी क्षमता थी जो सरसरी दृष्टि में असन्तुलित प्रतीत होते हैं। संक्षेप में, बेजबरुवा में निरीक्षण की क्षमता थी। असमिया जीवन की विचित्रताओं का जो विद्रूप उन्होंने प्रस्तुत किया है वह अन्य कोई नहीं कर पाया। और फिर भी लोग उन्हें सह लेते थे। यही नहीं, उनकी भंड़ैती भी सह ली जाती थी, क्योंकि उनके पाठक जानते थे कि वे

कुछ भी क्यों न कहें, असमिया जनों के प्रति उनमें आधारभूत प्यार था।

प्रचलित धारणा के अनुसार यह मानना भूल होगी कि लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा अट्टहास के अलावा और कुछ न थे। बेजबरुवा के व्यक्तित्व को इस प्रकार किसी एक ही आयाम से बाँधकर नहीं देखा जा सकता। विक्टर ह्यूगो के-से अधिकार से असमिया के साहित्यिक परिदृश्य पर लगभग अर्द्ध शताब्दी तक छाये रहने वाले इस व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व गहन प्रेरणा से पूर्ण था और उसमें सोद्देश्यता की विशिष्ट गंभीरता थी।

बेजबरुवा अपने समय की सन्तान थे, उनका समय प्रत्येक संक्रान्ति काल की भाँति विरोधी उद्देश्यों का समय था। ब्रिटिश शासन के संघात के अधीन नये सांस्कृतिक दृष्टिकोण समाविष्ट हो रहे थे। निस्संदेह यह तर्क-संगत था, पर तर्काग्रह की प्रक्रिया में नई समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं। समाज शनैः-शनैः अपनी प्राचीन टेकों से डिगता जा रहा था और इस प्रक्रिया में वह एक ऐसे बेमेल स्तूप में जा पहुँचा था जो न घर का था, न घाट का। यह बात नहीं है कि बेजबरुवा में सृजन-स्फूर्ति न थी। उन्होंने जिस प्रकार जगमगाते गद्य में असमिया जीवन की विविध भंगिमाओं को आत्मसात् और अभिव्यक्त किया वैसा अन्य कोई असमिया लेखक नहीं कर पाया।

लेखक के रूप में बेजबरुवा का उपकरण दुहरा था: (१) निरीक्षण और उसके द्वारा प्राप्त नर-नारियों का, सामाजिक दृष्टिकोणों और रीतियों का, पूर्वी असम, विशेषतया शिवसागर और उत्तरी लखीमपुर के उनके अपने परिवेश में उपलब्ध धारणाओं और विनोद वृत्ति का अनुभव : (२) उनके निजी अनुभव, मानवीय और बौद्धिक, जो घर से बहुत दूर, विशेषतः कलकत्ता और सम्बलपुर में बैठकर परिष्कृत और रूपान्तरित किये गए। अपने घर से इतनी दूर रहने के कारण वे मुक्त भाव से नितान्त तटस्थ और निरपेक्ष रूप में वस्तुओं का आकलन कर सके। उन्होंने जो कुछ देखा और जाना था वह उनकी स्मृति के गह्वरों में सुरक्षित बना रहा और उन्होंने उसे परवर्ती वर्षों में व्यंग्य और विनोद से पूर्ण चित्रों में गम्भीरता और वैदग्ध्य से अभिव्यक्त किया। वस्तुओं को उनके सत्य रूप में देखने का आग्रह, और उसीके अनुषंग रूप में, एक पारदर्शी शैली, निरीक्षणप्रिय मानवीयता और व्यापक दृष्टिकोण—इन सबसे मिलकर ही बेजबरुवा की साहित्यिक कृतियों का अद्वितीय सौन्दर्य निर्मित हुआ है।

ग्रन्थानुक्रमणिका

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा की कृतियां

सामाजिक अध्ययन

सभापतिर अभिभाषण : वह्नि प्रकाश कार्यालय, कलकत्ता, १६४५। गौहाटी में सम्पन्न असम साहित्य सभा के सातवें अधिवेशन में दिया गया अध्यक्षीय अभिभाषण।

काव्य

कदमकली : दूसरा संस्करण। साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १६५१।

नाटक

बेलिमार : दूसरा संस्करण। वह्नि पब्लिशिंग हाउस कलकत्ता। चन्द्रकांत सिंह के राजत्व काल से सम्बद्ध असम बुरंजी पर आधारित।
चक्रध्वज सिंह : प्रथम संस्करण १६१५। दूसरा संस्करण साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १६५०। पाँच अंकों का ऐतिहासिक नाटक।
चिकरपति-निकरपति: साहित्य प्रकाश, गौहाटी।
जयमति कुँवरि : टिम्बर एण्ड स्टोर एजेन्सी, हावड़ा, १६१५।
लितिकाइ : साहित्य प्रकाश, गौहाटी। प्रहसन।
नोमल : दूसरा संस्करण। साहित्य प्रकाश, गौहाटी। प्रहसन।
पाचनि : साहित्य प्रकाश, गौहाटी।

कथा साहित्य

जुनुका : प्रथम संस्करण लेखक द्वारा, १९१० । दूसरा संस्करण, साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९३३ ।

बुढ़िआइर साधु : तृतीय संस्करण, साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९५० ।

जोनबीरी : द्वितीय संस्करण, साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९४९ ।

सुरभि : प्रथम संस्करण लेखक द्वारा, १९०९ । दूसरा संस्करण, साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९६६ ।

ककादेउता आरु नातिलौरा : तृतीय संस्करण, साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९५१ । बालोपयोगी लोक-कथाएँ ।

पदुम कुँवरि : साहित्य प्रकाश, गौहाटी । ऐतिहासिक उपन्यास ।

साधु-कथार कूकि : तृतीय संस्करण, साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९४८ ।

निबन्ध

बारबर : पी० सी० दास, कलकत्ता, १९१५ ।

तत्त्व-कथा : असम साहित्य सभा, गौहाटी, १९६३ ।

भागवत-कथा : लेखक द्वारा प्रकाशित, १९१५ ।

व्यंग्य विनोद

बरबरुवार : भावर बुड़बुड़ानी, साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९५१ भूमिका लेखक-बिरिंचिकुमार बरुवा और सत्येन्द्रनाथ शर्मा ।

कामत कृतित्व लभिबर संकेत : दूसरा संस्करण, असम बंगाल स्टोर्स, कलकत्ता, १९१६ ।

कृपावर बरुवार काकोटोर टोपला : दूसरा संस्करण, साहित्य प्रकाश गौहाटी ।

बरबरुवार बुलनी : साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९६४ ।

कृपावर बरुवार ओवतनी : प्रथम संस्करण लेखक द्वारा, १९०९ । दूसर

संस्करण, साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९६०।

इतिहास और जीवनी

डाँगरिया दीनानाथ बेजबरुवार संक्षिप्त जीवन चरित : कलकत्ता।
शंकरदेव : दूसरा संस्करण, बरकटकी एजेन्सी, कलकत्ता, १९२६।
श्री शंकरदेव आरु श्री माधवदेव : लेखक द्वारा, कलकत्ता, १९१४।
गदाधर सिंह साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९६६।
मोर जीवन सौवरण : भाग १। वह्नि प्रकाश कार्यालय, कलकत्ता १९४५।
मोर जीवन सौवरण : भाग २। असम साहित्य सभा, गौहाटी, १९६१।
बेजबरुवार वंशावली : लेखक द्वारा प्रकाशित।

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा विषयक पुस्तकें

विश्वरसिक बेजबरुवा : कमलेश्वर चलिहा। बरकटकी कम्पनी, जोरहाट १९३९।
बेजबरुवार साहित्य प्रतिभा : साहित्य सभा द्वारा सम्पादित। साहित्य प्रकाश, गौहाटी, १९६१।